੧ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

जीवन वृत्तान्त

श्री गुरु रामदास जी

लेखक : स. जसबीर सिंघ

क्रांतिकारी गुरु नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़

Website : www.sikhworld.info

नोट: यहां दी गई सारी जानकारी लेखक के अपने निजी विचार हैं। यह जरूरी नहीं कि सभी लेखक के विचारों से सहमत हों।

जीवन वृतांत श्री गुरू रामदास जी

श्री गुरू रामदास जी का प्रकाश (जन्म) लाहौर नगर (पाकिस्तान) के बाजार चूना मण्डी में 24 सितम्बर सन् 1534 तद्‌नुसार संवत 1591, 20 कार्तिक शुक्लपक्ष रविवार को पिता हरिदास जी के गृह माता दया कौर की पुण्य कोख से हुआ। ज्येष्ट पुत्र होने के कारण अड़ोसी-पड़ोसी व सम्बन्धी आप को जेठा कह कर बुलाया करते थे। इस प्रकार आप का नाम राम दास के स्थान पर जेठा प्रसिद्ध हो गया। आप अभी नन्हीं आयु के थे कि आप जी की माता का निधन हो गया।

हरिदास जी छोटी-मोटी दुकानदारी ही करते, जिस से साधारण सी आय होती। वे नाम के ही हरिदास नहीं बल्कि वास्तव में हरि भक्त थे। किन्तु निराकार उपासक, साकार देवी-देवताओं तथा मूर्ति पूजा में बिल्कुल विश्वास नहीं रखते। स्वभाव के बहुत मधुर और संतोषी प्रवृति के स्वामी थे। अल्प सी आयु में ही संतुष्टि अनुभव करते और अधिकांश समय जरूरतमंदो की सेवा करके अत्मिक आन्नद प्राप्ति की चेष्टा करते रहते। प्रभु की लीला ऐसी हुई कि जब बालक रामदास (जेठा जी) केवल सात वर्ष के ही हुये तो आप ने भी नश्वर शरीर त्याग दिया और प्रलोक गमन कर गये। दामाद के निधन का समाचार प्राप्त होते ही हरिदास जी के सास व ससुर शोक व्यक्त करने लाहौर आये और अपने नाती जेठा जी को लोटते समय साथ बासरके गांव ले गये।

स्थानीय गांव निवासी आपके ननिहाल में आप के नाना व नानी माँ को उन के दामाद के देहांत पर शोक व्यक्त करने आये जिन में श्री अमर दास जी तथा उन की पत्नी मनसा देवी जी भी थी श्री अमर दास जी ने बालक रामदास (जेठा जी) को बहुत स्नेह से सांत्वाना दी और कहा बेटा धैर्य रखो भगवान सब भला करेगा।

अब बासरके गांव में ही बालक रामदास (जेठा जी) का पालन - पोषण प्रारम्भ हुआ। इन्हीं दिनों श्री अमरदास जी बीसवी बार हरिद्वार गंगा स्नान को गये किन्तु लौटते समय उन को एक वैष्णों साधु ने गुरू विहिन होने का व्यंग किया और घृणा करता हुआ बिना भोजन किये चला गया। इस कारण आप के हृदय में गहरा अघात हुआ। आप 'सत्य-गुरू' की खोज में खडूर नगर श्री गुरू अंगद देव जी की शरण में पहुंच गये और वहीं गुरू सेवा में स्वयं को समर्पित कर दिया किन्तु वर्ष में एक-दो बार घर पर अपने प्रियजनों से मिलने पहुँच जाते तो अध्यात्मिक दुनियां पर विचार-विर्मश होता। इन सभाओं में बालक रामदास (जेठा जी) भी पहुँच जाते और ज्ञान चर्चा बहुत ध्यान से सुनते। बालक राम दास की जिज्ञासा देखकर श्री अमर दास बहुत प्रभावित होते। इस प्रकार वह उनको भा गया और उन के हृदय में इस अनाथ बालक के लिए अथाह स्नेह उमड़ पड़ा अत: वह मन ही मन इस बालक को उस की विवेकशील बुद्धि के कारण चाहने लगे। समय व्यतीत होता गया। आपको प्रारंभिक शिक्षा बासरके गांव की पाठशाला में प्राप्त हुई। आप तीष्ण बुद्धि के स्वामी थे अत: अन्य विद्यार्थियों में सदैव अग्रणी रहते। आप पर अध्यापक गण सदैव प्रसन्न रहते परन्तु आप के नाना जी का अकस्मात निधन हो गया। अत: आप को शिक्षा बीच में ही छोड़कर जीविका अर्जित करने के लिए केवल बारह वर्ष की आयु में ही परिश्रम करना पड़ गया। पहले-पहल आप की नानी माँ ने आप को घुंघडियां (उबले हुए चने) बिकरी करने के लिए अपने गांव बसारके में ही भेजा किन्तु यहां बिकरी न के बराबर होती। कड़े परिश्रम के पश्चात भी गुजर-बसर योग्य धन प्राप्त नहीं होता। उन्हीं दिनों आप को ज्ञात हुआ कि श्री गुरू अंगद देव जी के आदेश अनुसार श्री अमरदास जी ब्यासा नदी के तट पर शाही मार्ग (जरनैली सड़क) के किनारे एक 'गोइंद वाल' नामक नया नगर बसा रहे है। कुछ दिन पश्चात जब गांव वासियों को यह मालुम हुआ कि श्री गुरू अमरदास जी अपने परिवार सहित नये नगर 'गोइंद वाल' में पुर्नवास के लिए जा रहे है तो गांव के सभी सत्संगी निराश और उदास दिखाई देने लगे किन्तु किशोर रामदास (जेठा जी) ने बहुत धैर्य से योजना बनाई और अपनी नानी माँ के समक्ष एक प्रस्ताव रखा कि नये नगर में मज़दूरों और कारीगरों का जमघट लगा रहता हैं। इस के अतिरिक्त शाही मार्ग होने के कारण आवागमन भी बहुत बड़ी संख्या में सदैव बना रहता है तो आप ने अपनी नानी माँ से विचार किया कि यदि ऐसे स्थानों पर मैं अपना छोटा सा व्यवसाय चलाने का प्रयास करूँ तो वहाँ चलने की सम्भावना अधिक हैं क्योंकि भूखे मज़दूर अल्प-अहार रूप में उबले हुए चने सेवन करना बहुत पसंद करते है और यात्री भी चनों के प्रयोग को प्राथमिकता देते है। इस प्रकार मुझे धंधे में लाभ होगा। और हम अपनी जीविका सहज में अर्जित कर सकेगे। नानी माँ को यह सुझाव बहुत अच्छा लगा और उन्होंने नये नगर गोइंदवाल में जेठा जी को पुर्नवास की अनुमति प्रदान कर दी। इस प्रकार रामदास (जेठा जी) गोइंदवाल अपनी जीविका अर्जित करने के लिए नानी माँ सहित श्री अमरदास जी के संरक्षण में पहुँच गये।

रामदास (जेठा जी) ने गोइंदवाल आकर अपना एक छोटा सा मकान बना उस में रहने लगे। वह प्रात:काल उठते, शौच-स्नान के पश्चात प्रभु चिन्तन-मनन में खो जाते, सूर्य उदय होने पर धर्मशाला जाते सत्संग करते। समय मिलने पर संगत को पंखा करते अथवा जल पान करवाते। इस प्रकार उन का मन सदैव सेवा करने की चेष्टा में रमा रहता। तत्पश्चात घर लौटते, तब तक नानी माँ उनके लिए उबले हुए चन्नों की छाबड़ी तैयार कर देती। नाश्ता करके आप ब्यासा नदी के घाट पर चले जाते। वहां पतन पर नावों के पुल पार करने वाले यात्रियों का तान्ता

लगा हुआ होता। यहीं आप के चन्नों की यात्रियों द्वारा खूब खरीद की जाती जिससे आप को सहज में जीविका मिल जाती किन्तु कभी-2 चनें बच जाते तो आप मध्यान्तर के समय उन स्थानों पर पहुँच जाते जहां मज़दूर व कारीगर भवन निर्माण के कार्यो में जुटे होते वहां इन चनों को वे लोग बहुत प्रसन्नता से खरीदते इस प्रकार आप संध्या तक अपनी जीविका का कार्य समाप्त करते। फिर अगले दिन के लिए सामग्री खरीद कर नानी माँ को देते और उन का घरेलू कार्यो में हाथ बटाते। रात्री के भोजन उपरान्त आप आसन लगाकर भजन- चिंतन में लम्बे समय तक लिवलीन रहते। इस प्रकार दिन व्यतीत होने लगे। कभी - कभी आप ब्यासा नदी पार कर के श्री गुरू अंगद देव जी के दरबार में उन के दर्शनों को भी पहुँच जाते। वहां गुरू चरणों में बैठ कर शिक्षा प्राप्त कर लोट आते और उसी शिक्षा के अनुसार जीवन व्यापन करते। लगभग पांच वर्षो पश्चात जब श्री गुरू अंगद देव जी ने श्री अमरदास जी को गुरू गद्दी देकर अपना उतराधिकारी नियुक्त किया तो आप को अति प्रसन्नता हुई और फूले नहीं समाये। गुरूदेव जी के आदेश अनुसार जब श्री गुरु अमर दास जी ने गोइंदवाल को अपना स्थाई प्रचार केन्द्र बना लिया तो गोइंदवाल में दूर-दूर से सिक्ख-श्रद्धालु संगत बड़े पैमाने में आने लगे। श्री गुरू अमरदास जी ने दर्शनार्थियों के लिए सदैव बटने वाले लंगर की व्यावस्था की। अब जब भी अवसर मिलता जेठा जी लंगर की सेवा में समय देने लगे उन का सिक्खी में विश्वास तो पहले से ही परिपक्व था अब जबकि श्री गुरू अमरदास जी को गुरू गद्दी प्राप्त हुई तो उनके प्रति असीम श्रद्धा का समुंद्र मन में उमड़ने लगा। साध संगत की सेवा की लगन जनून में बदल गई, जिस से उन्हें सेवा में से कोई अगम्य आन्नद प्राप्त होने लगा। किन्तु उन्होंने अपने परिश्रम से उपार्जिता नहीं छोडी, छाबड़ी लगा कर छोले बेचने का कार्य जारी रखा। वास्तव में वह आत्म निर्भरता के महत्त्व को जानते थे और परिश्रम से अर्जित जीविका को गुरू भक्ति से कम नहीं समझते थे। अत: आप एक सच्चे सिक्ख के अनुरूप

घालि खाइ किछु हथहु देइ

के महान गुरू उपदेश के अनुसार जीवन व्यतीत कर रहे थे।

श्री गुरू अमरदास जी के गद्दी प्राप्ति के पश्चात जब दरबार का काम बढ गया तो भाई जेठा जी (रामदास) वहीं कार्यरत रहते। जब गुरू दरबार में संगत अधिक जुटती तो वे अन्य कार्य छोड़ कर संगत की आवभगत करते। संगत स्वागत-सत्कार पाकर सन्तुष्ट हो जाती तब आप उन्हें शीतल जल पिलाते और पंखे से हवा करते रहते। जब सब विश्राम करते तो आप बर्तन साफ करते और लंगर में सफाई के लिए झाडू पोचा लगाते। सेवा करना ही उनका मुख्य लक्ष्य था। सेवा की महान भावना शायद उनको अपने पिता हरिदास से प्राप्त हुई थी जिसमें सेवा के बदले कोई आकाँक्षा नहीं थी। नि:स्वार्थ भाव से सेवा करना ही जैसे उनके जीवन का एकमात्र व्रत था। सेवा में तत्पर रहने से उन को सन्तुष्टि प्राप्त होती थी।

श्री गुरू अमरदास की दृष्टि से भाई जेठा जी की गुरु भक्ति और धर्म निष्ठा छिपी हुई न थी वह भी जेठा जी को बहुत चाहने लगे और चाहते थे कि यह प्रीत सदैव बनी रहे। इस बीच आपकी सुपत्नी श्रीमती मन्सा देवी जी ने एक दिन अपनी छोटी बेटी कुमारी भानी के विवाह का सुझाव रखा और किसी योग्य वर की तलाश पर बल दिया। गुरूदेव जी ने सहज़ भाव से उन से प्रश्न किया कि आपको बिटिया के लिए किस प्रकार का वर चाहिए। उत्तर में मन्सा देवी जी ने कहा-वह जो युवक जेठा है न जो सेवा में सदैव तत्पर रहता है उस जैसा कोई होना चाहिए। इस पर उत्तर में गुरूदेव बोले जेठे जैसा तो कोई अन्य युवक हो ही नहीं सकता यदि जेठे जैसा दामाद चाहिए तो उस के लिए एक मात्र उसे ही स्वीकार करना होगा। इस पर मन्सा देवीजी ने कहा-आप ठीक कहते है किन्तु इस विषय में बेटी भानी से विचार -विमर्श कर लेना चाहिए। तभी गुरूदेव जी ने भानी जी को बुला कर उनकी इच्छा जाननी चाही तो उन्होंने उत्तर दिया, कि इस विषय में मैं क्या जानू, आप जो उचित समझे करें मुझे सब स्वीकार है।

तभी संदेश भेजकर गुरूदेव ने सेवक जेठा जी को बुला लिया और उन्हें कहा-बेटा हम तुम्हें अपना दामाद बनाना चाहते है क्या तुम यह रिश्ता स्वीकार करोगें। जेठा जी यह बात सुन कर अवाक रह गये उनके आश्चर्य का ठीकाना ही न था। वह विचारने लगे कहां राजा भोज कहां गंगू तेली यह सब मैं क्या सुन रहा हूँ उनको अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। तब गुरूदेव ने उन्हें बहुत स्नेह से कहा-हां यह सत्य है हम तुम को अपनी बेटी भानी का रिश्ता देते है। इस पर जेठा जी गुरू चरणों में दण्डवत प्रणम करने लगे और उन्होंने कहा हे गुरूदेव! मैं तो अनाथ लाहौर की गलियों में ठोकरे खाने वाला एक मामूली छाबड़ी लगाकर जीविका अर्जित करने वाला आप के चरणों की धूल समान, आप मुझे इतना सम्मान क्यों दे रहें हैं। उत्तर में गुरूदेव जी कहां यह तो तेरी सेवा का मेवा है और आदेश दिया जाओ बारात ले कर आओ ताकि विवाह सम्पन्न कर दिया जाए।

घर आकर जेठा जी ने अपनी नानी माँ को खुशखबरी दी और बताया कि गुरूदेव जीने आदेश दिया है कि लाहौर जाकर बारात बनाकर लाओ।

जेठा जी लाहौर से बारात लेकर आये तो श्री गुरू अमरदास जी ने बारात का भव्य स्वागत करते हुए सन 1553 तद्‌नुसार संवत 1610, 22 फाल्गुन को अपनी सपुत्री कुमारी भानी जी का विवाह उन के साथ सम्पन्न कर दिया। श्री रामदास (जेठा जी) तो यह सौभाग्य प्राप्त कर कृतज्ञ हो गये। अब वह और भी लगन के साथ अपने को योग्य सिद्ध करने के लिए सेवा में व्यस्त रहते। अब रामदास जी को पूर्ण गुरू के साथ माता-पिता का स्नेह भी प्राप्त हो रहा था अतः उनकी खुशियों की सीमा नहीं थी। ये जोड़ी भी बहुत आदर्श थी। जहां जेठा जी गुरमति-गुणों से परिपूर्ण थे वहीं श्रीमती भानी जी भी गुरू उपदेशों पर चलने वाली थी। उन्होंने भी गुरू-पिता की सेवा करके उनके हृदय में एक विशेष स्थान बनाया हुआ था। उन का स्वभाव अति सुशील, संयमी, नम्रता व श्रेष्ठ बुद्धि के गुणों से पूर्ण था अतः इस दम्पति का गृहस्थ जीवन बहुत सहज व सुखमय व्यतीत होने लगा।

श्री गुरू अमरदास जी का दामाद होना बड़े गर्व की बात थी। इतना बड़ा सम्मान प्राप्त कर भला किस का दिमाग सातवें आसमान पर नहीं चढ़ जाएगा। किन्तु श्री रामदास जी ऐसे लोगों में से नहीं थे। गुरू-पुत्री का पति होने के बावजूद उन को गुमान अथवा अभिमान छू नहीं सका। वह पहले की भांति ही एक सामान्य सिक्ख की तरह गुरू-सेवा में तल्लीन रहते। बल्कि सच्चाई तो यह थी कि विवाह के पश्चात उनकी गुरू के प्रति भक्ति अधिक बढ़ गयी थी वे दुगने उत्साह के साथ गुरू कार्यो में संलग्न रहने लगे। ये कार्य गुरूदेव के चाहे व्यक्तिगत हों अथवा संगत के हों, वह समान रूप से उन्हें पूरा करते रहते थे। लोगों को आश्चर्य था कि गुरू का दामाद होने के बावजूद जेठा जी किस सामान्य सिक्ख की तरह सभी से मिलजुल कर रहते और स्नेह पूर्ण व्यवहार करते। उन की शालीनता, अपनत्व सभी का हृदय मोह लेता किसी को भी कभी आभास नहीं हुआ कि वे गुरू दामाद होने के नाते एक विशिष्ट व्यक्ति का स्थान रखते है।

श्री रामदास (जेठा) जी प्रातः विस्तर त्याग देते। स्वयं शौच स्नान कर अपने गुरूदेव जी को स्नान करवाने के लिए जल की व्यवस्था करते अथवा ऋतु अनुसार गर्म जल लाकर के देते। तत्पश्चात उनके वस्त्र स्वच्छ कर के सूखने डालते। फिर धर्मशाला में पहुंच कर संगत रूप में प्रभु चिंतन-मनन में खो जाते। सूर्य उदय होने पर लंगर की सेवा में तत्पर होते दूर से आई संगत को बहुत प्रेम से भोजन करवाते जब कभी अवकाश प्राप्त होता यदि गुरूदेव विश्राम मुद्रा में मिल जाते तो वह उनका शरीर दबाते। गुरू आज्ञा का वह तत्काल पालन करते सेवा में भी कोई कोताही नहीं आने देते। उनके ये कार्य सदैव नियमपूर्वक एक सम चलते रहते। यदि कोई उनके सत्कार्यो को देख आश्चर्य प्रकट करता तो वह केवल मुस्करा कर हर्ष प्रकट करते। उनके चहरे पर कभी भी अभिमान का कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होता। इस प्रकार जेठा जी जहां संगतों के लिए सुखद अनुभव छोड़ते थे वही गुरूदेव की दृष्टि में अपने लिए स्थान बना रहे थे।

गोइंदवाल में पेयजल की कमी के कारण श्री गुरू अमरदास जी ने बावली निर्माण का कार्य प्रारम्भ करवाया तो श्री जेठा जी अपनी प्रवृति अनुसार कर्तव्य निष्ठा की सीमाएं पार करते हुए सब के आगे होकर खुदाई का काम प्रारम्भ कर दिया और सिर पर मिट्टी का टोकरा उठा कर बावली से बाहर लाने लगे। उन्होंने न दिन देखा और न रात बस मिट्टी खोद-खोद कर टोकरी में भरते और दूर फेंक आते। उन की सेवा अन्य सिक्खों के लिए प्रेरणा श्रोत बन गयी। बावली का निर्माण तीव्र गति से होने लगा किन्तु नीचे एक विशाल सख्त चट्टान निकल आई जिस कारण काम में बाधा उत्पन हो गई। उन्हीं दिनों आप की जाति बिरादरी के कुछ भाई बन्धु लाहौर नगर से हरिद्वार गंगा स्नान जा रहे थे, रास्ते में उन्होंने गोइंदवाल पड़ाव डाला। उन का विचार था यहां हमारा भाई जेठा, गुरूदेव का दामाद है उसके पास रहने से सभी प्रकार की सुख-सुविधा उपलब्ध होगी और समय आराम से कटेगा। अतः वे गोइंदवाल पहुँच कर भाई जेठा जी को ढूढ़ने लगे किन्तु उनको जेठा जी कहीं दिखाई नहीं दिये। कार-सेवा के लिये अपार जन समूह उमड़ा हुआ था। वे बहुत कठनाई में पड़ गये। पूछताछ करते हुए अंत में उनको मालूम हुआ जेठा जी बावली की कार-सेवा में जुटे हुए हैं। वे लोग खोजते-खोजते जब वहां पहुँचे तो देखते क्या है कि जेठा जी एक साधारण मज़दूर की भांति सिर पर मिट्टी की टोकरी उठाए कार्य में व्यस्त है। यह देखकर जेठा जी के इन भाई-बन्धुओं के हृदय को बहुत ठेस पहुँची। वे कल्पना कर रहे थे कि हमारा भाई जेठा गुरू जी का दामाद है अतः वह एक विशिष्ट व्यक्ति होने के नाते बहुत ऐश्वर्य से रहता होगा किन्तु यहां दशा उनकी कल्पना के विपरीत थी। वे जेठा जी को देख कर बोखला उठे । उन्होंने जेठा जी को भी बहुत खरी खोटी सुनाई। वह कहने लगे, यदि सुसराल में रह कर मिट्टी की टोकरी ही ढोनी थी तो यह कार्य लाहौर आकर कर लेना था यहां सुसराल में रहकर हमारी नाक क्यों कटवा रहें हो? उत्तर में श्री जेठा जी ने कहा-मैं अपने को केवल गुरूदेव का शिष्य मानता हूँ मेरा उनके साथ कभी ससुर-दामाद का रिश्ता न है न होगा इसलिए मुझे सेवा सर्वप्रिय है और मैं सेवा त्याग नहीं सकता क्योंकि यह सर्वोतम है और सर्व सुखों की दाती है। किन्तु इस उत्तर से वे लोग सन्तुष्ट नहीं हुए। इन लोगों में से एक-दो बजुर्ग श्री गुरू अमर दास जी के समक्ष उपस्थित होकर उनको गिला-शिकवा करने लगे कि कम से कम आप को तो चाहिए कि दामाद से कोई ऐसा काम न ले जिस से समाज़ में सब की निन्दा हो। इस पर गुरूदेव गम्भीर हो गये और उत्तर में कहा-जेठा मन मौजी है जैसे उसे खुशी होती है वह करता है हमारी तरफ से उसे बेटों जैसे अधिकार प्राप्त है। उसी समय

रामदास (जेठाजी) भी वहीं उपस्थित हो गये। उन्होंने वातावरण की गम्भीरता को समझा और परस्थिती को अनुकुल बनाने के लिए दोनों हाथ जोड़कर गुरूदेव से क्षमा याचना करते हुए कहने लगे। हे गुरूदेव! हम तुच्छ बुद्धि के प्राणी है हमारी त्रुट्टियों पर ध्यान नहीं देना। हम अल्पज्ञ है हमें सेवा जैसी अनमौल निधि के महत्त्व का ज्ञान ही नहीं है। अत: आप मेरे इन बन्धुओं को क्षमा कर दे क्यों कि ये लोग नहीं जानते कि वे क्या अवज्ञा कर रहे है।

दाम्पत्य जीवन

श्री गुरू अमरदास जी जेठा जी के इष्ट देव थे ही इस के साथ उन की पत्नी भानी जी के लिए भी वह पिता के साथ-साथ पूर्ण पुरूष थे वह जानती थी भले ही मैं दुनियावी दृष्टि से उन की पुत्री हूँ परन्तु वह वास्तव में प्रभु में अभेद पुरूष है अत: वह उनकी सेवा में ही अपना उदार समझती थी। इसलिए वह सदैव एक सिक्ख के रूप में उन के प्रति श्रद्धा भावना रखती थी और बड़ी नम्रता पूर्ण व्यवहार करती, उनकी प्रत्येक आज्ञा का तन-मन से पालन करती। गुरूदेव वृद्धावस्था में थे अत: भानी जी विशेष रूप से यह ध्यान रखती कि उन्हें किसी प्रकार की असुविधा का एहसास न हो। वह सतर्क रहती कि पिता जी को किसी वस्तु को मांगने की आवश्यकता न पड़े वह उनकी आवश्यकतओं की वस्तुएं पहले से ही उनके पास जुटा कर रख देती थी।

श्री रामदास (जेठा) जी का वैवाहिक जीवन सुखमय था। श्रीमती भानी को पत्नी रूप में प्राप्त कर के वह बहुत सन्तुष्ट थे। उन का दाम्पत्य जीवन शांति तथा आनन्द से व्यतीत हो रहा था, क्योंकि दोनों की परमेश्वर के प्रति आस्था थी।

समयानुसार श्री रामदास जी तीन सुपुत्रों के पिता बने। श्रीमती भानी जी की पवित्र कोख से क्रमश: सर्वप्रथम सन् 1560 में श्री पृथी चन्द का जन्म हुआ, फिर सन् 1562 में श्री महादेव ने जन्म लिया और सन् 1565 में जी अर्जुन देव जी का प्रकाश हुआ। पुत्रों के पालन-पोषण में श्री रामदास जी और माता भानी जी ने विशेष ध्यान दिया। उनको संसारिक विद्या के साथ-साथ आध्यामिक विद्या में भी निपुण किया। तीनों पुत्र भी घर परिवार के आदर्श वातावरण से बेहद प्रभावित थे। एक तरफ पिता का नि:स्वार्थ जीवन दर्शन उन पर छाया था, दुसरी तरफ नाना जी के महान कार्यो ने उन पर अपनी गहरी छाप छोड़ी। किन्तु इन तीनों पुत्रों मे विशेष रूप से श्री अरजन देव जी पिता और नाना जी के पद चिन्हों पर चलने वाले सद्‌गुणों से भरपूर निकले। इसके ठीक विपरीत बड़े पुत्र पृथी चंद संसारिक प्रवृतियों के स्वामी, आकांक्षी तथा चतुर स्वभाव के थे। किन्तु श्री महादेव जी संसार से उपराम और उदासी विचारधारा के थे।

सम्राट अकबर को जेठा जी ने सन्तुष्ट किया

सम्राट अकबर बहुमुखी प्रतिभा का स्वामी तथा विवेक बुद्धि वाला था । भले ही बाल्यकाल में वह स्कूली ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाया क्योंकि उसके पिता हुमायु पराजित होने के कारण कहीं स्थिरता का जीवन व्यापन नहीं कर सके थे। परन्तु अकबर नम्रता तथा मधुरता के विशेष गुणों के कारण लोकप्रिय बनता चला गया । न्याय-इन्साफ को वह प्राथमिकता देता था । इस लिए उस का प्रशासन धीरे धीरे दृढ़ होता चला गया । एक बार उसके दरबार में कुछ रूढ़िवादी कट्टरपंथियों का प्रतिनिधिमण्डल पहुँचा और न्याय के लिए पुकार करने लगा कि हम सनातन हिन्दू हैं, हमारे जीवन में कर्मकाण्ड अनिवार्य है परन्तु गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी अमर दास जी एक नई प्रथा चला रहे हैं, जिससे वह हमारे कर्मकाण्डों पर गहरी चोट कर रहे हैं । वह हमारी प्राचीन प्रथाओं का परिहास करते हैं । उन का कहना है कि इन कर्मो के करने से समय और धन व्यर्थ नष्ट करना है क्योंकि इस से किसी भी उद्देश्य की सिद्धि होनी असम्भव है । उनका मानना है कि शरीर द्वारा किये गये कार्य आध्यात्मिक दुनिया में गौण हैं । वहाँ तो हृदय द्वारा किये गये कार्य ही फलीभूत होते हैं । इस प्रकार ये लोग हमारे प्रत्येक कार्यो में त्रुटियाँ बताकर समाज में पण्डित अथवा पुरोहित के महत्त्व को समाप्त कर रहे हैं । जिस से हमारी जीविका में बहुत बाधायें उत्पन्न हो गई हैं और हम कहीं के नहीं रहे हैं ।

अकबर ने सभी आरोप ध्यानपुर्वक सुने और उसने पाया कि यह आरोप नहीं बल्कि समाज का शोषण करने वालों द्वारा बनाया गया एक महापुरूष के प्रति षड्यन्त्र है, जिससे वे राजबल से सत्य का दमन करना चाहते हैं । अत: उसने उस प्रतिनिधिमण्डल को धैर्य बंधाया और कहा - मैं इस विषय में बहुत गम्भीर हूँ और दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात् कोई निर्णय करके न्याय करूँगा । इस प्रकार अकबर ने गुरूदेव को संदेश भेजा कि आप स्वयँ हमें दर्शन दें अथवा अपना कोई प्रतिनिधि भेजें जिससे पण्डित वर्ग के आरोपों का समाधन किया जा सके । उत्तर में गुरूदेव ने अपने दामाद जेठा जी को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके लाहौर नगर भेजा । अकबर उन दिनों अपने चचेरे भाई मिर्जा मुहम्मद हकीम द्वारा की गई बगावत का दमन करने के विचार से पँजाब (लाहौर) आया हुआ था ।

यह घटना सन् 1566 के लगभग की है । अकबर ने एक विशेष गोष्टि के विचार से प्रतिद्वन्द्वी पक्षों को आमने-सामने बैठा दिया और पण्डित वर्ग को आरोपों की सूची पढ़ने को कहा । पण्डितों ने पहले आरोप में यह कहा कि इन लोगों ने मनु स्मृति के बनाये विधान को रद्द कर दिया है और उनके द्वारा बनाये वर्ण आश्रम को ठुकरा कर समाज को खिचड़ी जैसा बना दिया है । यदि इसी प्रकार समाज को दुषित किया गया तो विद्वान (पण्डित) और मूर्ख में कोई अन्तर ही नहीं रहेगा । यह लोग पण्डितों को सामान्य व्यक्ति ही मानते हैं । उनके लिए कोई विशेष स्थान आदर सम्मान के लिए नहीं देते ।

उत्तर में गुरूदेव के प्रतिनिध भाई जेठा जी ने कहा - हम गुरू नानक देव जी द्वारा दर्शाये मार्ग पर चलते हैं । उन्होंने समाज का वर्णीकरण नहीं माना । उन की दृष्टि में सभी मानव समानता का अधिकार रखते हैं । जन्म से कोई छोटा बड़ा नहीं हो सकता । बड़प्पन व्यक्ति की योग्यता पर निर्भर करता है । इसी संदर्भ में वर्तमानकाल के गुरूदेव श्री गुरू अमरदास जी का कथन है -

जाति का गरबु ना करीअहु कोई ।।
बह्मु बिंदे सो बाह्मणु होई ।।१।।
जाति का गरबु न करि मूरख गवारा ।।
इसु गरब ते चलहि बहुतु विकारा ।।१।। नहाउ ।।
चारे वरन आखै सभु कोई ।।
बह्मु बिंद ते सभ ओपति होई ।।२।।
माटी एक सगल संसारा ।।
बहु बिधि भांडे घड़ै कुमारा ।

(भैरउ, म. ३, पृष्ठ ११२८)

भाव यह है कि किसी भी व्यक्ति को स्वर्ण जाति का झूठा अभिमान नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा विचारने से व्यक्ति आध्यात्मिक प्राप्तियों से वंचित रह जाता है और समाज में भी विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं । छोटा बड़ा बनाना यह प्रभु ने अपने हाथ में रखा है ।

सम्राट अकबर इस उत्तर को सुनकर सन्तुष्ट हुआ और कहने लगा कि मैं भी तो यही चाहता हूँ कि कोई किसी से जाति-पाति के मनघंड़त नियमों से घृणा न करें और सभी आपस में प्रेम से रहें । इस पर पण्डितों से पूछा गया कि आपका दूसरा आरोप क्या है ? पण्डितों ने बड़े सोच विचार के बाद कहा - हजूर, यह लोग स्त्रियों को बराबर का स्थान देते हैं । विधवा विवाह के लिए आज्ञा देते हैं और कहते हैं कि विधवा को सती नहीं होना चाहिए अथवा किया जाना चाहिए। बात यहाँ तक ही नहीं सीमित रह जाती, यह लोग तो नवविवाहिता को भी घूंघट नहीं निकालने देते और कहते हैं कि सुसर तथा जेठ पिता व भाई समान हैं, उनसे घूंघट कैसा ?

उत्तर में भाई जेठा जी ने कहा - हमारे गुरूदेव ने नारी जाति पर अमानवीय अत्याचारों को देखा है । अत: वह समाज की इस बुराई का कलंक मिटा देना चाहते हैं । इस बारे में उनका विचार है -

सतीआं एहि न आखीअनि जो मड़िआं लगि जलंनि ।।
नानक सतीआं जाणीअनि जि बिरहे चोट मरनि ।।
भी सो सतीआं जाणीआनि, सील संतोखि रहंनि ।
सेवनि साई आपणा, नित उठि समा:लानि ।

(सूही म. ३ पृष्ठ ७८७)

इसका भाव यह है कि विधवा नारी को बलपूर्वक अथवा फुसलाकर पति की चिता पर जला डालने से वह सती नहीं हो जाती । सती तो वह है जो पति की याद में संयमी, सन्तोषी, निष्कामी जीवन जी कर चले और पति के वियोग की पीड़ा में सदाचारी जीवन जीते हुए प्रभु के कार्यो पर सन्तुष्टि व्यक्त करे ।

सम्राट ने कहा - इस बात में भी तथ्य है । यदि पुरूष तीन अथवा चार तक विवाह कर सकता है तो स्त्री को विधवा होने पर भी पुन: विवाह की अनुमति क्यों नहीं दी गई । वास्तव में यह अन्याय है । न्याय तो यही होगा कि कम से कम विधवा स्त्री को पुन: विवाह करने का प्रावधान होना चाहिए और रही बात सती प्रथा की तो यह बात भी समाज पर कलंक है कि जीवित प्राणी को बिना किसी दोष के उसे जीवित जला दिया जाए । ऐसे अत्याचार को हम कानून बनाकर उसकी रोकथाम करेंगे । इस के लिए समाज में जागृति लाई

जानी चाहिए। जहाँ पर पर्दे का प्रश्न है । पर्दा किसी हद तक तो ठीक है परन्तु बिना कारण जरूरत से अधिक पर्दा भी समाज में बुराईयाँ ही उत्पन्न करता है अथवा साधारण जीवन जीने में बहुत सी कठिनाईयाँ ही कठिनाईयाँ आड़े आती है ।

इस बार पण्डितों ने कहा - हजूर! यह लोग शास्त्र तथा वैदिक परम्पराओं को तिलांजली दे रहे हैं । यह न मूर्ति पूजा करते हैं और न ही देवी देवताओं की पूजा करते हैं । इन्होंने गायत्री मंत्र के स्थान पर किसी नये मंत्र की उत्पत्ति कर ली है और तीर्थ यात्राओं इत्यादि को निष्फल कर्मकाण्ड बताते हैं । उत्तर में भाई जेठा जी ने कहा - गुरू नानक देव जी का हमें आदेश है कि प्रभु अर्थात परब्रह्म परमेश्वर केवल एक और केवल एक ही है, उसका प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं है क्योंकि प्रभु सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है, इसलिए उसे ही एक सर्वोत्तम शक्ति के रूप में बिना मूर्ति के पूजते हैं और उसके बदले में हम किसी भी देवी-देवताओं की कल्पना भी नहीं करते । रही बात गायत्री मंत्र की तो गुरू नानक देव जी के कथन अनुसार गायत्री केवल सूर्य की उपासना का मंत्र है जो कि केवल एक ग्रह मात्र है । उस जैसे करोड़ों सूर्य इस ब्रह्माण्ड अथवा आकाश गँगा में विद्यमान हैं । अत: हम इन सभी सूर्यो के निर्माता, जिसे हम अकाल पुरूष कहते हैं, के पुजारी हैं और हमारा मंत्र उस दिव्य ज्योति परब्रह्म परमेश्वर की स्तुति में, उस की परिभाषा के रूप में है जिसे हम मूलमंत्र कहते हैं । हमारे गुरूदेव के विचार से तीर्थ स्थान वही होता है जहाँ संगत मिलकर प्रभु स्तुति करे अथवा कोई पूर्ण पुरूष मानव कल्याण के कार्य करे ।

सम्राट अकबर इन उत्तरों से बहुत प्रसन्न हुआ और वह कहने लगा कि इस्लाम में भी अल्लाह को एक ही मान कर उसकी बिना मूर्ति के इबादत की जाती है, किसी भी फरिश्ते इत्यादि पर इमान नहीं लाया जाता ।

सम्राट ने पुन: कहा - मैं ऐसे महान मुर्शद (गुरू जी) के दीदार करना चाहूँगा और उसने पण्डितों के आरोप पत्र को तुरन्त रद्द कर दिया । इस प्रकार भाई जेठा जी गुरूदेव के प्रतिनिधि के रूप में अपना पक्ष प्रस्तुत करने में सफल हुए और सम्राट को सन्तुष्ट करके वापिस लौट आये ।

सम्राट अकबर श्री रामदास (जेठा) जी द्वारा गुरमति व्याख्या सुनकर लाहौर में बहुत प्रभावित हुआ। उसने विरोधी पक्ष का मुकदमा खारिज कर दिया। अत: उस के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि ऐसे महान गुरू जी के दर्शन अवश्य ही करने चाहिए जो केवल मानव कल्याण के लिए कार्य कर रहे है और समाज का वर्गीकरण समाप्त कर एक सूत्र में बांध रहे है। उसने गुरूदेव को संदेश भेजा कि वह आप के दर्शनों की अभिलाषा लेकर गोइंदवाल आ रहा है। गोइंदवाल में सम्राट का भव्य स्वागत किया गया किन्तु उसे समस्त संगत के साथ भोजन करने का आग्रह किया गया जो उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया। सम्राट लंगर प्रथा देखकर बहुत प्रभावित हुआ। उस ने अनुभव किया, मैं दीने इल्लाही नाम से जिस समाज की स्थापना करना चाहता था, उसी समाज की गुरू जी ने पहले से ही सृजना कर रखी है। मेरी तो कोरी कल्पना ही थी, किन्तु यहां गुरू अमरदास जी ने तो उसे साकार रूप दे कर व्यवहारिक बना दिया है। अब यहां न जाति-पाति है न ऊँच-नीच का भेदभाव, सभी वर्ग मिलजुल कर खुशहाल जीवन व्यतीत कर रहे हैं क्यों न मैं भी इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए अपना सहयोग गुरूदेव जी को दूं। इस विचार के आते ही उस ने गुरूदेव के सम्मुख प्रार्थना की कि मैं आपके मिशन (सिद्धांतिक विचारधारा) का समस्त देश में प्रसार देखना चाहता हूँ और उस के लिए अपना योगदान देना चाहता हूँ कृप्या उसे स्वीकार करें। गुरूदेव का प्रश्न था कि यह योगदान किस रूप में होगा? उत्तर में सम्राट ने कहा- लंगर का सभी व्यय वह वहन करेगा। गुरूदेव ने तुरन्त इन्कार कर दिया और कहा-लंगर कभी भी सरकारी खजाने अथवा किसी व्यक्ति विशेष के कोष से नहीं चला करते यह तो भक्तों अथवा संगत के अपने योगदान से ही फलीभूत होते है। इस पर सम्राट हठ करने लगा उस का कहना था कि मेरा भी गुरूघर में कुछ-न-कुछ योगदान स्वीकार करें मुझे आप अपनी कृपा से वंचित न रखे गुरूदेव ने उस की युक्ति संगत प्रार्थना स्वीकार कर ली और कहा-ठीक है हम किसी को निराश नहीं करते अत: आप भी अंश इस महान भण्डारे मे डाल सकते है। अकबर ने परगना झुबाल की जागीर का पट्टा गुरूदेव को सौंप दिया और कहा मेरी ओर से यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें। अब इस जागीर का भला गुरू अमरदास जी क्या करते? उन्हें कमी ही किस बात की थी। उन के हृदय मे सदैव जन कल्याण करने की ललक समाई रहती थी अत: उन्होंने विचार किया इस जागीर के माध्यम से क्यों न समाज के पीडित वर्गो के उत्थान के कार्य प्रारम्भ किये जाए। वह स्वयं तो वृद्धावस्था में थे, इसलिए श्री रामदास जी से परामर्श किया कि इस भूमि की कौन देख-भाल करने योग्य है तो उन्होंने सुझाव दिया कि श्री बुड्ढा जी उचित व्यक्ति है क्यों कि वह खेती-बाड़ी के कार्य में भी कुशल हैं। गुरूदेव को यह प्रस्ताव भा गया उन्होंने श्री बुड्ढा जी को झुबाल परगने की भूमि की देख-भाल करने का आग्रह किया तो उन्होंने सहर्ष गुरू आदेश जान कर स्वीकार कर लिया उन दिनों उन की आयु लगभग 50 वर्ष की थी। श्री बुड्ढा जी, श्री गुरू नानक देव जी के समय से गुरूघर की सेवा में समर्पित, निष्ठावान सेवक चले आ रहे थे। उन का लक्ष्य भी यही था कि वे किसी प्रकार इसके माध्यम से उपकार के कार्य करें। उन्होने झुबाल पहुँच कर समस्त भूमि को क्रमवार जुतवाया और उस पर ऋतु अनुसार

उचित फसलें उगवाई। जो भी अनाज उत्पन्न होता उसे लंगर के लिए भेज देते। अतिरिक्त अनाज गरीब लोगों में उन की आवश्यकता को देखते हुए बांट देते। यही कर्म कई वर्ष चलता रहा, जिस से लंगर प्रथा को बढ़ावा मिला। झुबाल की भूमि और श्री बुड्ढा जी के निवास स्थान को 'बीड बाबा बुड्ढा जी' के नाम से जाना जाने लगा।

श्री गुरू अमर दास जी युवास्था में संयुक्त परिवार के रूप में अपने अन्य भाई के साथ रहते थे, जब वे बासरके गांव से गोइंदवाल आ कर बसे तो भी उन के अपने परिवार में भी वहीं प्रथा आगे बढ़ी आपके दो बेटे श्री मोहन जी श्री मोहरी जी और दोनों दामाद श्री रामा जी, श्री रामदास (जेठा) जी आप के साथ ही रहते थे। माता मन्सा देवी जी की छतर छाया में ये संयुक्त परिवार बिना भेदभाव के फलता-फूलता गया। श्री गुरू अमरदास जी ने श्री रामदास (जेठा) जी को कहा- अब समय आ गया है तुम एक नये नगर का निर्माण करो, जिस से गुरू नानक साहब के सिद्धान्तो (मिशन) को अन्य क्षेत्रों में भी फैलाया जा सके। ऐसा करने से एक पंथ दो काज हो जाएगे। अत: उन्होंने बहुत बड़ी धन राशि इस कार्य के लिए रामदास (जेठा) जी को दी इस पर जेठा जी ने निवेदन किया कि यह कार्य मेरे अकेले के बस का नहीं आप किसी योग्य पुरूष को मेरे साथ सहयोग के लिए भेजे। बहुत विचार के पश्चात श्री बुड्ढा जी ही इस कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति पाये गए क्योंकि वह भूमि के क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में भी बहुत ज्ञान रखते थे। झुबाल गाँव से उन्हें वापस बुलाकर जेठा जी के साथ एक नया नगर बसाने के लिए भूमि खरीदने भेजा और सर्तक किया बिना मूल्य दिया कोई भूमि नहीं लेना। इस का कारण यह था कि उन को भाई गोइदे मरवाह द्वारा दान की गई भूमि के कडवे अनुभव थे। समय व्यतीत होने के साथ-साथ जिस प्रकार गोइंदे मरवाह के पश्चात उस के पुत्रों ने शत्रुओं के बहकावे में आकर गुरूदेव पर झुठे आरोप लगाए और प्रशासन के समक्ष दूषण बाजी भी की थी। वह नहीं चाहते थे कि फिर कोई ऐसी दुखद घटना हो।

श्री बुड्ढा जी की देख रेख में उन के परामर्श से श्री रामदास (जेठा) जी ने गुमटाला, तुंग,सुलतान विंड तथा गिलवाली गाँवो के मध्य में विशाल भूमि उचित मूल्य देकर सन् 1570 में खरीदी। श्री रामदास (जेठा) जी ने भूमि खरीदने के पश्चात स्वयं नये नगर बसाने की परियोजना बनाई और नगर की अधार-शिला रखने के लिए श्री गुरू अमर दास जी को आमन्त्रित किया। निमन्त्रण पा कर गुरूदेव स्वयं पधारे जब कि वह इन दिनों वृद्धावस्था में थे। उन्होंने समस्त क्षेत्र का निरीक्षण किया और नगर की आधारशिला रखते हुए उसका नाम 'गुरू का चक्क' रखा। नगर की पेयजल की अपूर्ति के लिए श्री जेठा जी ने प्रारम्भ में एक सरोवार बनवाया जिस का नाम सन्तोखसर रखा। किन्तु उन का मुख्य उद्देश्य नगर को गुरूमति प्रचार-प्रसार का केन्द्र बनाने का था। अत: उन्होने दीर्घ गामी परियोजनाएं बनाई जिस में एक विशाल सरोवार का निर्माण मुख्य लक्ष्य था। सन् 1573 में इस सरोवर की अधारशिला रखने के लिए उन्होंने अपने मुख्य सहयोगी श्री बड्ढा जी से आग्रह किया कि कृप्या आप इस सरावर का 'टक' लगाये जिस से संगत 'कार सेवा'(श्रमदान) आरम्भ कर दे। श्री बुड्ढा जी ने एक बेर के वृक्ष के नीचे एक जल कुण्ड (तालाब) को केन्द्र मानकर खुदाई प्रारम्भ कर दी। जिसे आज कल दुख भजनी बेरी कहते है। नये सरोवर की खुदाई का कार्य बहुत तीव्र गति से चल रहा था, किन्तु श्री गुरू अमरदास जी ने अपना स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण श्री जेठा जी को 'गुरू के चक्क' से वापस बुला लिया। जिस कारण सरोवर निर्माण के कार्य में बाधा उत्पन्न हो गई।

पतिव्रता रजनी

पंजाब के पट्टी नगर के जागीरदार दुनी चंद की पांच पुत्रियों थी इसलिए उस के मन में एक पुत्र की अभिलाषा बनी रहती थी। इस कामना की पूर्ति के लिए उस ने बहुत से अनुष्ठान इत्यादि करवाएं किन्तु इस को हर बार निराशा ही हाथ लगी, पुत्र के स्थान पर पुत्री ही जन्म लेती रही अत: उसका भगवान के अस्वतित्व में विश्वास उठ गया और वह नास्तिक हो गया उसने क्षमता के अनुसार अपनी चार पुत्रियों का विवाह बहुत धूम-धाम से कर दिया। जब छोटी पुत्री के वर की खोज हो रही थी तो उन दिनों उसकी अन्य पुत्रियां मायके आई हुई थी। वे सभी मिलकर अपने पिता की स्तुति कर रही थी वह बहुत बड़ा दाता है, उसने अपनी पुत्रियों के विवाह के समय वह सब कुछ दिया जो कोई अन्य राजा-महाराजा भी अपनी पुत्रियों के लिये नहीं दे सकते। इस पर सब से छोटी लड़की जो अभी कुमारी थी ने कहा- वास्तव में यह बात सत्य नहीं है क्योंकि हम सभी को हमारे भाग्य का विद्याता ही देता है। हमारे पिता तो केवल एक नमित मात्र है अर्थात वह एक साधन है जिस के माध्यम से हमें यह सब कुछ प्राप्त होना ही है। इस बात पर अन्य बहनें सहमत नहीं हुई और उन में मतभेद हो गया। बड़ी बहनों ने छोटी बहन जिस का नाम रजनी था को अकृतघन माना और कहा-यह पिता जी के उपकारों की स्तुति तो करती नहीं बल्कि हमें भी हीन दृष्टि से देखती है और चापलूस बताती है इसलिए इस का बहिष्कार करना चाहिए। उन्होंने ऐसा ही किया। जब यह बात उनके पिता जागीरदार दुनीचंद को मालुम हुई तो वह छोटी बेटी रजनी पर बरस पड़ा और कहने लगा मैंने तुम्हें बेटों की तरह पाला है और हर प्रकार की सुख सुविधा जुटा

कर दी है परन्तु एक तुम हो कि नमक हराम जैसी बाते करती हो मैं तुम्हें और तेरे भगवान को देख लूगा कि वह तुम्हारा किस प्रकार पालन पोषण करता है। रजनी पिता की करोपी से विचलित नहीं हुई क्योंकि वह नित्य साध-संगत में जाती थी और वहां गुरूवाणी श्रवण करती अथवा अध्ययन करती रहती थी। उस के हृदय में पूर्ण आस्था थी कि वह प्रभु जिस ने उसे जन्म दिया है, समर्थ है, वही विधाता है अन्य प्राणी तो केवल साधन मात्र है।

जैसे- *कोऊ हरि समानि नही राजा*
ए भूपति सभि दिवस चारि के झूठे करत दिवाजा *पृष्ठ 856*

रजनी को गुरूवाणी पर पूर्ण भरोसा था वह अपनी विचारधारा पर दृढ़ रही अत: उसने पिता से क्षमा याचना नही की इस पर पिता ने अभिमान में आकर रजनी के लिए एक कुष्ट रोगी वर के रूप में खोज लिया और रजनी का उस के साथ विवाह कर दिया। रजनी ने प्रभु पर पूर्ण भरोसा रखते हुए उस कुष्टी युवक को अपने वर रूप में स्वीकार कर लिया। उसने तुरन्त पिता का घर त्याग दिया और अपने कुष्टी विकलांग पति को एक छोटी सी गाड़ी में बिठा कर रस्सी से उसे खीचते हुए गांव-गांव नगर-नगर घूमने लगी और भिक्षा मांग कर गुजर बसर करने लगी। इस प्रकार उस के कई दिन बीत गये। एक दिन वह घूमते-घूमते एक नये नगर के बाहर एक निर्माण अधीन सरोवर के किनारे विश्राम करने रुकी, उस ने अपने पति को एक बेरी के वृक्ष की छाया में बिठा दिया और स्वंय नगर में भिक्षा के लिए गई। उसके जाने के पश्चात उस के पति ने देखा कुछ पक्षी बेर के वृक्ष से पर बैठे हुए है वह बारी-बारी वृक्ष से उतर कर सरोवर के जल में डुबकी लगाते है और जब बाहर निकलते है तो उन की काय-कल्प हो जाता है अर्थात वह काले रंग से सफेद रंग के हंस रूपी पक्षी में परिवर्तित हो जाते है। सरोवर के जल में अद्भुत चमत्कारी शक्ति देख कर उस के मन में अभिलाषा उत्पन्न हुई कि क्यों न मैं भी इस सरोवर मे स्नान करके देख लू शायद मेरे कुष्ट रोग का भी निवार्ण हो जाए। इस विचार के आते ही कुष्टी ने बल लगा कर अपनी विक्लांगों वाली छोटी गाड़ी त्याग दी और धीरे-धीरे रेंगते हुए सरोवर में जाकर डूबकी लगाई। प्रकृति का आश्चर्यजनक चमत्कार हुआ क्षण भर में कुष्टी पूर्ण निरोग पूरुष में परिवर्तित हो गया। अब वह रजनी के लौटने की प्रतीक्षा करने लगा। जब रजनी वापस आई तो उसने वहां कुष्टी पति को न पा कर एक स्वस्थ सुन्दर युवक को देखा जो अपने को उसका पति बता रहा था। रजनी ने उस पर विशवास नहीं किया और उस पर अपने पति को लापता करने का आरोप लगाया। उन दोनों में इसी बात पर भयंकर तकरार प्रारम्भ हो गया जिस को सुनकर नगरवासी एकत्र हो गए। इस झगड़े का न्याय जन-साधारण के बस का नहीं था अत: उन्होंने सुझाव दिया आप दोंनो बाबा बुड्ढा जी के पास जाए क्योंकि वही इस सरोवर के निमार्ण के कार्य की देखभाल कर रहे हैं। ऐसा ही किया गया बाबा बुड्ढा जी ने दोनों की बात ध्यान से सुनी और कुष्टी युवक से कहा-ध्यान से अपने शरीर को देखों कहीं पुराना कुष्ट रोग कहीं बाकी रह गया हो। युवक ने बताया कि दायने हाथ की उँगलियों का अग्रिम भाग अभी भी कुष्ट से प्रभावित है क्योंकि इस हाथ से मैंने एक झाड़ी को पकड़ कर डूबकी लगाई थी। इसलिए यह सरोवर के जल में भीगने से वंचित रह गया इस पर बाबा बुड्डा जी उन दोनों को उस स्थान पर ले गये और युवक को हाथ सरोवर में डालने के लिए कहा- देखते ही देखते बाकी के कुष्ट के चिन्ह भी लुप्त हो गये। यह प्रमाण देखकर रजनी सन्तुष्ट हो गई और वह दोनों सहर्ष जीवन व्यतीत करने लगे। यह स्थान दुख भजनी बैरी के नाम से जाना जाता है।

उत्तराधिकारी का चयन

श्री गुरू अमर दास जी ने अनुभव किया उनके श्वासों की पूंजी समाप्त होने को है और वह बहुत वृद्धावस्था में है। अत: गुरू नानक देव जी के पंथ को आगे बढ़ाने के लिए किसी सुयोग्य पुरुष का उन के उत्तराधिकारी के रूप मे समय रहते चयन कर देना चाहिए। बस फिर क्या था उन्होंने एक दिन अपने दोनों पुत्रों तथा दोंनो दामादों को पास बुलाकर कहा- मैं अब बहुत वृद्ध हो गया हूँ। मुझे विश्राम से बैठने के लिए बाउली के निकट चारों ओर चारों दिशाओं में अलग-अलग आसन अथवा थड़ें बना दे जिस से मैं इच्छानुसार संगत से बैठकर सम्पर्क बनाए रख सकूँ। यह आदेश सुनते ही दोनो पुत्रों ने यह कार्य किसी कुशल कारीगर से करवाने के लिए कहा और वापस चले गये किन्तु दामाद श्री रामा जी और श्री जेठा जी (रामदास) जी ने तुरन्त थड़ों का निर्माण प्रारम्भ कर दिया थड़े अर्थात मंच बन कर तैयार हुए तो गुरूदेव स्वयं उनका निरिक्षण करने आए, देखते ही उन्होंने थड़ों को अस्वीकार कर दिया कहा-इनके निर्माण में बहुत त्रुटियां हैं मेरे वृद्ध शरीर का ध्यान नहीं रखा गया अत: अब इन्हें गिरा कर पुन: निर्माण करें। गुरूदेव द्वारा थड़ो को रद्द कर देने से श्री रामा जी के हृदय को बहुत ठेस पहुंची वह क्षुब्ध

हुए किन्तु श्री जेठा जी सहर्ष गुरूदेव जी की इच्छा अनुसार पुन: निर्माण कार्य में व्यस्त हो गये । जेठा जी से प्रेरणा पा कर (रामा जी ने) भी अपना कार्य पुन: प्रारम्भ किया किन्तु वह पहले वाली उन में लगन न रही। थड़े के पुन: तैयार होने की सूचना पाते ही गुरूदेव उन का निरीक्षण करने आये। इस बार उन्होंने दोनों दामादों को झिड़की दी और कहा–तुम लोंग मेरी इच्छा अनुकूल थड़े निर्माण करने में असफल रहे हो। समय और सामग्री दोनों नष्ट कर रहे हो इसलिए इनको गिराकर मेरी आवश्यकता को समझ कर थड़े बनाओ। इस पर रामा जी तिलमिला उठे और कहने लगे आप जी ने जैसा समझाया था मैंने वैसा ही बनाने का प्रयास किया है इस से और अच्छा मुझ से नहीं बन सकता किन्तु श्री जेठा जी गुरूदेव के समक्ष दोनों हाथ जोड़ कर विनती करने लगे–''मैं अल्पग, तुच्छ, बुद्धि बाला हूँ मेरी त्रूट्टियों पर ध्यान न दे कृप्या मुझे एक अवसर और प्रदान करे जिस से मैं आपकी आवश्यकता को समझ कर थड़े का पुन: निर्माण कर सकूँ'' इस प्रकार वह गुरूदेव का पुन: आदेश प्राप्त कर कार्यरत हो गये किन्तु रामाजी ने निर्माण कार्य त्याग दिया।

तीसरी बार केवल श्री जेठा जी ने ही थढ़ा बनाया। जब गुरूदेव जी ने उस का निरीक्षण किया तो फिर कहा–जेठेया जिस तरह मैंने तुझे समझाया था यह उस प्रकार नहीं बन पाया। यह भी मुझे पसन्द नहीं। इसे भी गिरा दो। इतना सुनकर श्री जेठा जी ने गुरूदेव के चरण मे अपना शीश रख दिया और कहा '' मैं तो अनजान भुलक्कड़ हूँ। आप कृपालू हो मेरी बार–बार भूल क्षमा कर देते हो। यह मेरा दुर्भाग्य ही है कि मुझे आप की बात समझ नहीं आई। फिर समझा दें मैं पूरे तन–मन से आप के दर्शाये अनुसार थड़ा बनाने का प्रयत्न करूगां। बस यह वाक्य सुनते ही गुरूदेव ने जेठा जी को चरणों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और कहा–बेटा मुझे थड़ों की कोई आवश्यकता नहीं मुझे तो तुम्हारा स्नेह चाहिए। जो कि मुझे मिल गया हैं। तेरे में वह सभी कुछ है जो गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी में होना चाहिए।

अगले दिन श्री गुरू अमरदास जी ने एक विशेष दीवान सजाने का आदेश दिया। जिस में सभी गणमान्ये अतिथियों को भी अमन्त्रित किया गया था। गुरूदेव ने समस्त संगत के समक्ष श्री जेठा जी (रामदास) जी को अपने आसन पर विराजमान कर दिया और बाबा बुड्डा जी को आदेश दिया कि वह गुरू गद्दी की औपचारिकताएं सम्पन करें तथा स्वयं श्री जेठा जी के चरणों में नतमस्तक हो गये इस प्रकार उन्होंने संगत को सम्बोधन कर के कहा–मैंने बहुत लम्बे समय से जेठा जी को निकट से देखा है और कई बार कड़ी परीक्षा भी ली है इस प्रकार पाया है कि जेठा जी में वह सभी गुण विद्यामान है जो गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी में होने चाहिए अत: मेरा निर्णय है कि गुरू ज्योति का अगला स्वामी श्री जेठा जी (रामदास) होंगे। इस प्रकार उन्होंने समस्त संगत तथा अपने पुत्रों को आदेश दिया कि वे उन का अनुसरण करते हुए चौथे गुरू श्री रामदास जी को शीश झुकाकर नमस्कार करें। सभी ने गुरू आदेश का पालन करते हुए ऐसा ही किया किन्तु गुरुदेव के बड़े सपुत्र श्री मोहन जी ने आज्ञा की अवहेलना की और वह उठकर वापस चले गये।

बाबा श्री चंद जी की दर्शनार्थ भेंट

श्री गुरू नानक देव जी के बड़े सपुत्र बाबा श्री चंद जी का अपने पिता से प्रारम्भिक जीवन में ही सैद्धान्तिक मतभेद उत्पन्न हो गया था। श्री गुरू नानाक देव जी गृहस्थ आश्रम को ही श्रेष्ठ मानते थे। किन्तु श्री चन्द जी ने सदैव यती रहने की शपथ ले ली थी अत: वह गुरूदेव की कृपा के पात्र नहीं बन सके। परन्तु गुरू अंश होने के कारण उन की समाज में बहुत प्रतिष्ठा थी वैसे उन्होंने भी नाम–बाणी का आभ्यास करके आध्यात्मिक दुनियां में ऊँची अवस्था प्राप्त कर ली थी। इन दिनों इन्होंने जिला गुरदासपुर मे बारठ नामक ग्राम में अपना निवास स्थान बना रखा था। जब आपने श्री गुरूरामदास जी (श्री जेठा) जी की स्तुति सुनी कि वह अति नम्र और मधुर भाषी है तो उन का हृदय श्री रामदास जी के दर्शन को ललयित हो गया वह अपनी साधु मण्डली सहित 'गुरू के चक्क' (अमृतसर) पहुंचे। वह देखना चाहते थे कि हमारे पिता जी का उतराधिकारी वास्तव में नम्र है या यूं ही अफवाह फैला रखी है? अत: वह परीक्षा लेने के विचार से गुरूदरबार के लिए चल पड़े। जैसे ही श्री गुरू रामदास जी को मालूम हुआ कि श्री गुरू नानक देव जी के बड़े सपुत्र उनसे मिलने आ रहे तो वह उनकी अगवानी करने पहुँचे और उन को मार्ग से ही अभिनंदन करके अपने साथ नगर में ले आये और खूब सेवा की। बाबा श्री चन्द जी की इस समय लगभग 84 वर्ष की आयु थी। वृद्ध शरीर को श्री गुरू रामदास जी ने विश्राम के समय अपने हाथों से सहलाया (मुट्ठी चापी) गुरूदेव की दाड़ी बहुत घनी और लम्बी थी इस के विपरीत श्री चन्द जी की दाड़ी बहुत हल्की और छोटी थी। अत: उन्होंने हस्य रस में मुस्कुराते हुए बचन किये हे पुरखा! अर्थात हे पुरूषत्व के स्वामी! इतना सुन्दर दाहड़ा काहे को बढाया है? उत्तर मे गुरूदेव ने नम्रतापुर्वक कहा–आप जैसे महापुरूषों के चरण झाड़ने के लिए। यह मधुर वचन सुनते ही बाबा श्री चंद बोल उठे कि गुरू अंगद देव जी ने नम्रता व सेवा के बल से गुरूगद्दी प्राप्त की थी ठीक वैसे ही आप भी उनके उत्तराधिकारी होने के नाते नम्रता व प्रेम की मूर्ति हैं। इसी कारण इतनी महान पदवी प्राप्त की है। मैंने आप की महिमा पहले भी सुनी थी किन्तु अब प्रत्यक्ष देख लिया। अत: अब कोई संशय बाकी नही रहा।

सोमाशाह

श्री गुरू रामदास जी जब नये नगर को बसाने का कार्यक्रम चला रहे थे तो उन दिनों सोमा नामक एक व्यक्ति पश्चिमी पंजाब के जिहलम नगर से आप के दर्शनों को आया। जब वह आप के सम्पर्क में आया तो आप की उदारता से वह इतना प्रभावित हुआ कि वह घर लोटना ही भूल गये। वह दिन-रात कार-सेवा (श्रमदान) में व्यस्त रहने लगा। सरोवर का निमार्ण कार्य जोरो पर चल रहा था। दूर-दूर से संगत इस कार्य में अपना योगदान करने के लिए पहुँच रही थी अत: संगत के लिए लंगर भी दिन-रात तैयार हो रहा था। एक दिन सोमा जी ने अधिक भीड़ देखकर महसूस किया कि मुझे लंगर पर नहीं निर्भर रहना चाहिए इसलिए मुझे अवकाश के समय अपनी जीविका स्वयं कमानी चाहिए जिस से सेवा फलीभूत हो। यह विचार आते ही उन्होंने एक साधारण सी किरत-कार करनी प्रारम्भ कर दी। उन्होंने उबले हुए चने की छाबड़ी लगा ली। जिस से कार सेवक अथवा अन्य व्यक्ति भी अपनी आवश्यकता अनुसार अपनी भूख मिटा सकते थे। यह कार्य वह प्रतिदिन करने लगे। गुरूदेव उस की आत्मनिर्भरता पर विश्वास देखकर मन ही मन अति प्रसन्न हुए। प्रारम्भिक अवस्था में गुरूदेव स्वयं भी इसी प्रकार का कार्य करते हुए अपनी जीविका आर्जित करते थे अत: सोमचन्द में वह अपना प्रतिबिम्ब देख रहे थे। एक दिन उनके हृदय में विचार उत्पन्न हुआ क्या सोम चन्द की भी अत्मिक अवस्था इतनी ऊँची उठ चुकी है कि वह पूर्ण रूप से समर्पित हो चुका है अथवा अहंभाव लेश मात्र है। इस बात की परीक्षा लेने के लिए उन्होंने एक दिन सोमचन्द को बुला कर विनोद में उस से पूछा कितने की बिक्री हुई हैं इस पर सोमचन्द ने वह समस्त सिक्के गुरूदेव के हाथ में दे दिए जो उस ने आज कमाये थे। गुरूदेव ने हँसते हुए उसे कहा-कहे तो यह सारी राशि हम गुरू के खजाने में डाल दें। उत्तर में प्रसन्नचित होकर सोमचन्द ने कहा-यदि ऐसा हो जाए तो मैं बहुत भाग्यशाली हो जाँऊगा। गुरूदेव ने कहा- अच्छा! तो लो फिर आज तुम्हारे लिए यह कोष भी खोल देते है। तुम उसे कितना भर सकते हो? यह कह कर उन्होंने वह धन कारीगरों में वेतन के रूप में वितरण कर दिया। सोमचन्द खुशी-खुशी घर वापस चला गया अगले दिन उसी समय गुरूदेव फिर सरोवार के कार्य का निरीक्षण करने आये संगत और कारीगर निर्माण कार्यो में व्यस्त थे सोमचन्द दूर एक कोने में उबले हुए चने बिक्री कर रहा था। गुरूदेव उस के पास जा पहुँचे और उस से आज फिर पूछा कितनी बिक्री हुई है लाओ उसने भी सभी सिक्के गुरू देव जी के हाथों पर धर दिये गुरूदेव ने आज भी वह सभी सिक्के कारीगरों में वेतन रूप में वितरण कर दिये। तीसरे दिन गुरूदेव ने फिर उसी प्रकार से सोमचन्द से उस की बिक्री की पूर्ण राशि लेकर वितरण कर दी। चौथे दिन उसने गुरूदेव को देखते ही अपनी बिक्री की इक्टठी की हुई राशि गुरूदेव को सौंपने के लिए बढा चला आया। किन्तु आज गुरूदेव जी कहा-सोमियां, हम आज तुम से लेने नहीं देने आये है। तुमने जो अपनी पूंजी गुरुघर के निर्माण कार्यो में लगाई है वह फलीभूत हो रही है, जल्दी ही तुम सोमाशाह कहलाओंगे। गुरूदेव का वचन सत्य सिद्ध हुआ। सोमा कुछ ही दिनों में समृद्धि की ओर बढ़ने लगा। देखते ही देखते वह ध नी व्यक्तियों में गिना जाने लगा। जब गुरू राम दास जी ने मसंद प्रथा प्रारम्भ की तो सोमाशाह को भी राजस्थान के अलवर क्षेत्र में धर्म प्रचार का कार्य सौंपा गया, जो उन्होंने पूरी लगन से निभाया।

आज भी अल्वर में सोमाशाह के बाद शाह जी की एक गद्दी चली आ रही है लेकिन वर्तमान उत्ताराधिकारी श्री गुरू ग्रंथ साहिब के साथ-साथ शाह जी के उपाशक है जो कि देहधारी गुरू डंम का एक रूप है।

भाई आदम जी

एक कुलीन समृद्ध जाट परिवार के ज़मीदार के यहां सन्तान नहीं थी। नाम उस व्यक्ति का नाम उदम सिंह था किन्तु समाज में उस की नम्रता के कारण भाई आदम नाम से उसको प्रसिद्धि प्राप्त थी। सन्तान की अभिलाषा के कारण वह कई संतों व फ़कीरों के चक्कर काटता रहा किन्तु उस की मंशा पूर्ण नहीं हुई धीरे-धीरे आयु भी बढ़ती चली गई इस लिए उसने अपने भाग्य पर सन्तोष कर लिया। एक दिन उस की भेंट एक सिख से हुई उसने उसे विश्वास दिलवाया की तेरी इच्छा गुरू नानक देव जी के घर से अवश्य ही पूर्ण होगीं इन दिनों उनके चोथे उत्तराधिकारी श्री गुरू राम दास जी गद्दी पर विराजमान थे। अत: आप उन की शरण में 'गुरू के चक्क' चले जाओ।

भाई आदम जी अब वृद्धावस्था के निकट पहुंचने वाले थे अत: उन्होंने सन्तान की मंशा त्याग दी थी किन्तु उनकी पत्नी के हृदय में अभी भी यह उमंग जागृत थी। उस के बल देने पर भाई आदम जी केवल आध्यात्मिक फल की प्राप्ति के दृष्टिकोण से गुरू चरणों मे उपस्थित हो गये और जन साधारण की तरह सेवा में जुट गये। गुरू घर का वातावरण उनको बहुत भाया। यहां सभी लोग निष्काम होकर सेवा करते दिखाई देते थे। समस्त संगत के हृदय में केवल आध्यात्मिक उन्नति की एक मात्र चाह होती थी। बस यह आकर्षण भाई आदम जी को यही स्थाई निवास करने पर विवश करने लगां उन्होंने चक्क राम दास (गुरू के चक्क) मे ही अपना अलग से घर बसा लिया ओर समृद्ध होने का स्वांग त्याग कर एक श्रमिक की भांति जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। वह दाम्पति प्रात: उठकर जंगल में चले जाते, वहां से ईधन की लकड़ियों

के दो गट्ठर बांध कर गुरू के लंगर में डालकर घर चले जाते। वहां वे दैनिक जीवन के कार्य करते फिर मध्यातंर के पश्चात जंगल में पुन: चले जाते वहां से फिर दो गट्ठर उठा कर लोट आते किन्तु इस बार भाई आदम जी अपने सिर वाला बोझा बाजार में बिक्री कर देते और उन की पत्नी अपने वाला बोझा घर की रसोइ के लिए इन लकड़ीयों का ईधन रूप में प्रयोग करती परन्तु इन गट्ठरों से अधिकांश लकड़ियां बची रहती जो कि धीरे-धीरे एक बड़े भण्डार रूप में इकट्ठी होती गई।

शीत ऋतु थी। एक दिन गुरूदेव के दर्शनों को दूर-दूर प्रदेशों से संगत आई हुई थी कि अकस्मात वर्षा होने लगी जिस कारण सर्दी बढ़ती चली गई। धीमी-धीमी वर्षा रूकने का नाम ही नहीं ले रही थी। दो-तीन दिन वर्षा इसी प्रकार बनी रही। इस बीच लंगर में ईंधन समाप्त हो गया। भोजन तैयार करने में बाधा उत्पन्न हो गई। जैसे ही इस बात का भाई आदम जी को मालुम हुआ वह अपने घर से एकत्र किया हुआ ईधन उठा-उठा कर लंगर के लिए लाने लगे। उन की पत्नी ने जब संगत को ठिठुरते हुए देखा तो उसने भी घर में एकत्र किये हुए लकड़ी के कोयले अंगीठियों में जलाकर संगत के समक्ष आग सेकने के लिए धर दियों। संगत ने राहत की सांस ली। जब विश्राम गृह में गुरूदेव संगत की सुध लेने पहुंचे, तो उन्होंने पाया कि संगत बहुत प्रसन्न है। उन्होंने पूछा! यह अंगीठियां जलाकर समस्त डेरों में पहुचाने की सेवा किस ने की है तो मालुम हुआ भाई आदम और उसकी पत्नी ने यह सेवा अपने सिर ली हुई है। यह जानकर गुरूदेव अति प्रसन्न हुए उन्होंने भाई आदम को अपने दरबार में बुलाकर कहा हम आप की सेवा पर रीद्ध है, मांगो क्या चाहते हो? भाई आदम जी अब हृदय से निष्काम हो चुके थे। उन्होंने सिर नीचा कर लिया ओर कहा- मुझे आप की कृपा चाहिए यदि रीद्ध हो तो केवल प्रभु नाम का धन दीजिए। उत्तर में गुरूदेव ने कहा- वह धन तो आप को पहले से ही मिला है किन्तु हम आप की मूल अभिलाषा पूर्ण करना चाहते है। इस पर भी भाई आदम जी कुछ मांग नहीं पाये क्यों कि उनको वृद्धावस्था में सन्तान सुख मांगते लज्जा का अनुभव हो रहा था। फिर गुरूदेव ने उन से आग्रह किया आप अकेले नहीं है, कल दरबार में अपनी पत्नी को भी साथ लेकर आओं। अगले दिन भाई जी अपनी पत्नी सहित गुरूदरबार में हाज़िर हुए। गुरूदेव ने उनकी पत्नी से पूछा आप के हृदय में कोई कामना हो तो बताओ वह कहने लगी घर से चलते समय पुत्र की कामना थी। जिस को आधार बनाकर आपके दरबार में पहुंचे हैं। किन्तु अब उस का कोई ओचित्य नहीं रहा क्योंकि हम अब बड़ी आयु के हो गये है। गुरूदेव ने कहा- गुरू घर में किसी बात की कमी नहीं है यदि कोई निष्काम होकर सेवा करता है तो उसकी आंतरिक मन की कामना अवश्य ही फलीभूत होती है आप चिंता न करें जल्दी ही आप एक सुन्दर पुत्र की माता बनेगी। उस का नाम भक्तू रखना। उस का पालन-पोषण गुरू मर्यादा पूर्वक करना जिस से वह आप की कुल का नाम रोशन करेगा। इस प्रकार आर्शीवाद देकर गुरूदेव ने इस दाम्पति को उनके ग्राम वापस भेज दिया। कलान्तर में गुरू इच्छा से ऐसा ही हुआ। भाई भक्तू जी ने गुरूघर की बहुत सेवा की और आगे उनकी सन्तान ने गुरू दरबार मे बहुत नाम कमाया।

भाई हिंदाल जी

जिला अमृतसर के जड़ियाला नगर का हिंदाल नामक एक भक्तगण श्री के गुरू अमर दास जी दर्शनों को आया। उसके हृदय में आत्म कल्याण की इच्छा थी अत: वह लंगर की सेवा में व्यस्त रहने लगा। श्री गुरू अमर दास जी जब परम ज्योति मे विलीन हो गये तो वह श्री गुरू राम दास जी की शरण में 'गुरू के चक्क' पहुंच गया वहां भी वह समर्पित तन-मन से लंगर की सेवा में व्यस्त रहने लगा। इस अनन्य सिख की चर्चा भी गुरूदेव के कान तक पहुंची। गुरूदेव ने एक दिन लंगर का निरीक्षण करने का मन बनाया। भाई हिंदाल जी यात्रियों की सेवा में आत्मिक आनंद का अनुभव करते थे और सेवा में इतने लीन रहते थे कि उन को गुरू दरबार में उपस्थित होने का अवसर भी नही मिल पाता था। वह सदैव अपनी सुरति गुरू शब्द में लगाए रहते थे और संगत को प्रभु रूप जानकर तन-मन से उनकी सेवा करते थे।

एक दिन जब भाई हिंदाल जी आटा गूंथ रहे थे तो अकस्मात गुरूदेव जी लंगर में पधारे। सभी सेवकों ने अपना अपना कार्य छोड़कर गुरूदेव को नमस्कार किया। उस समय भाई हिंदाल के पास समय नहीं था कि वह आटे से सन्ने हुए हाथ धो सके। वह तुरन्त गुरू चरणें में पहुंचे, पहले उन्होनें अपने संने हुए हाथ पीठ के पीछे किये और घुटनों के बल बैठकर शीश झुका कर प्रणाम किया। उनकी यह अनोखी विधि देख कर गुरूदेव मुस्कुरा पड़े। कृपा सिंधु रीझ उठे और उन्होंने आपने अनन्य शिष्य को थापी दी। लम्बे समय से सेवा करते हुए भाई हिंदाल जी का जीवन भी उच्च कोटी का हो गया था अत: गुरूदेव ने उनको आदेश दिया कि आप की सेवा स्वीकारीय है अब आप अपने निवास स्थान पर गुरूमति का प्रचार प्रसार करें। गुरू आज्ञा का पालन करते हुए भाई जी घर लोट गये और वहां सिख सिद्धान्तों का प्रचार करने लगे। आपने जीवन भर निष्काम मानवता की सेवा की परन्तु आप के देहांत के पश्चात आप की सन्तानों ने अपनी पूजा करवाने की भूख के कारण श्री गुरू नानक देव जी की जीवनी पुन: लिखते समय बहुत सी गुरूमति विराधी विचारधारा पोथियों में लिखवा डाली हैं जिन से पथं को सावधान रहना चाहिए।

मसंद प्रथा की स्थापना

श्री गुरू राम दास जी का वास्तविक जीवन माया से उपराम था। उनकी जीवन शैली साधारण मनुष्यो जैसी थी। उद्धारचित होने के कारण उनके हृदय में धन का कोई महत्त्व था ही नहीं। परन्तु मानव कल्याण हेतु वह जो निर्माण कार्य करवा रहे थे उस में धन के अभाव से बाधा उत्पन होनी प्रारम्भ हो गई। इस प्रकार गुरूदवे ने अनुभव किया कि सर्वजनिक कार्यो के लिए विशाल कोष की आवश्यकता है जिसे किसी विशेष योजना वध प्रणाली की स्थापना से पूर्ण किया जा सकता है अत: उन्होंने अपने समस्त अनुयीयों के लिए आदेश जारी करवाया कि वे गुरू घर के कार्यो के लिए आपनी आय का दसवंध (दशमांश) सदैव भिजवाते रहे जिससे आर्थिक कठनाईयां उत्पन्न न हो और निर्माण कार्य विधि पुर्वक सम्पन्न हो सके किन्तु संगत ने आप से आग्रह किया कि आप कृप्य अपना कोई प्रतिनिधि भेजकर हमारे घरों से दसवंध एकत्र करवा लिया करें क्योंकि प्रतिमाह अथवा प्रतिवर्ष आप की सेवा में उपस्थित होना सम्भव नहीं होता यदि कोई ऐसी व्यव्स्था स्थापित की जाये जिस से हम समय-समय गुरू घर में दशमांश भेज सके तो यह कार्य बहुत सहज हो जायेगा। गुरूदेव ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करके कुछ उच्च व निर्मल जीवन वाले सिक्खों को इस कार्य के लिए उन्हीं के अपने क्षेत्र मे नियुक्त कर दिया कि वह संगत से दूर दराज जाकर सर्म्पक करें और उनके द्वारा दिया गया धन एकत्रित करके भेजे अथवा स्वयं लाकर गुरू कोष में जमा करवाएं। सिख इतिहास में इन मध्यस्थ आदणीय व्यक्तियों को मसंद कह कर पुकारा जाता रहा है। मसंद शब्द अरबी के मसन्द से बिगड़ कर बना है। इस शब्द का वास्तविक अर्थ है गद्दी लगााकर बैठने का अधिकार प्राप्त व्यक्ति अर्थात दूसरे शब्दों में गुरूदेव द्वारा विशेष अधिकार प्राप्त वह व्यक्ति जो गुरूमति के प्रचार प्रसार के साथ सिक्खों द्वारा दिये दशमांश का धन एकत्र कर के गुरू कोष में समय समय पहुंचाते रहने वाला व्यक्ति। ये मसंद प्रथा पहले-पहल खूब फली-फूली। सभी नियुक्त मसंद वर्ष में दो-तीन बार बैसाखी और दीवाली उत्सव पर गुरू दरबार में उपस्थित होते और गुरूदेव अथवा उनके प्रतिनिधि को समस्त लेखा समर्पित करते।

इस प्रकार गुरूदेव के पास गुरू घर के कार्यो के लिए एक सुदृढ़ आर्थिक आधार स्थापित हो गया। अब गुरूदेव अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तीव्र गति से कार्य करवा सकते थे। अत: उन्होंने नव निर्माण के कार्यो में धन व्यय करना प्रारम्भ कर दिया। देखते ही देखते 'गुरू का चक्क' एक विकसित नगर में परिवर्तित होने लगा और इसके साथ ही वह विशाल सरोवर भी लगभग पक्का हो गया जिसेके निर्माण का आदेश श्री गुरू अमर दास जी स्वयं दे गये थे।

गुरूदेव के बड़े पुत्र श्री पृथी चन्द जी धन सम्पदा से बहुत स्नेह करते थे। वह एक कुशल कार्यकर्ता का सदैव अभिनय करते रहते और धन का संग्रह करने में विश्वास करते किन्तु गुरूदेव उनको सदैव सर्तक करते कि यह धन व्यक्तिगत कार्यो के लिए नहीं है यह तो केवल परहित के कार्यो के लिए सगंत ने भेजा है यदि यह पूजा का धन कोई व्यक्ति संचित करके रखता है तो उस का प्रभाव विष पूर्ण होता है जिससे उस धन का प्रयोग करने वालो का मन भ्रष्ट होता है और वह आध्यात्मिक दुनियां से दूर चले जाते है। इस पर भी पृथीचन्द में कोई परिवर्तन नहीं आया वह सदैव मसंदों से सांठ-गांठ करता रहता। एक दिन गुरूदेव जी ने उसे चांदी के सिक्के गिनने को कहा-यह धन कार-भेंट रूप में गुरूदेव को भेजा गया था। जब सब सिक्के गिने जा चुके तो गुरूदेव ने पृथी चन्द से कहा- अपने हाथ देखो कितने काले हो गये है जानते हो, ऐसा क्यों हुआ है? इस बात का उचित उत्तर पृथी चन्द को नहीं सुझा। गुरूदेव ने रहस्य को स्पष्ट किया और कहा-धन की अभिलाषा जितने हाथ काले करती है उतना ही मन भी काला अथवा मैला कर देती है। अत: हमने तुझे कई बार कहा है कि धन केवल उचित प्रयोग करने की वस्तु है इसको संचित करना साँप को पालने के समान है।

गुरूदेव ने अगाह कर दिया था कि जो व्यक्ति पूजा का धन व्यक्तिगत कार्यो के लिए प्रयोग करेगा वह समय आने पर मन का मैला और आचरण से भ्रष्ट साबित होगा। ऐसा ही हुआ कुछ एक मसंदों को छोड़ कर अधिकांश मसंदों की सन्ताने भ्रष्ट आचरण की ही पाई गई। क्योंकि वह पूजा के धन को परिवारिक कार्यो में खर्च करने लग गये थे।

भाई गुरदास जी

श्री गुरू राम दास जी ने गुरू नानक पंथ के प्रचार हेतु कुछ विद्वानों को दूर प्रदेशों में भी भेजा। इन में उनके अपने चचेरे साले, भाई-गुरदास जी भी सम्मिलित थे। आप की नियुक्ति आगरा क्षेत्र में की गई। आपने गुरमति प्रचार-प्रसार की सेवा बहुत निष्ठा से की। स्थानीये जनता आपके प्रवचनों से बहुत प्रभावित हुई क्योकि आप बृज, फारसी, हिन्दी तथा पंजाबी भाषा का बहुत अच्छा ज्ञान रखते थे। आप जी ने श्री गुरू अमर दास जी की छतर छाया में प्रारम्भिक शिक्षा पाई थी अत: आप गुरमति के एक बड़े व्यारव्याकार बनकर उभरे। आप हिन्दू ग्रन्थों व शास्त्रों के भी पण्डित थे क्योंकि आप ने अपने पिता दातार चन्द जी से यह विद्या विरासत में सीखी थी। श्री गुरू राम दास जी ने अपना परलोक

गमन का समय निकट जानकर आप को आगरे से वापस बुला लिया। गुरूदेव को यह एहसास हो गया था कि हमारा बड़ा लड़का पृथीचन्द हमारे देहावसन के पश्चात् बहुत झगड़े करेगा जिन को बहुत सूझ-बूझ से सुलझाने के लिए। उसके मामे के रूप में किसी अति प्रभावशाली व्यक्तित्व की आवश्यकता है। अत: भाई गुरूदास जी गुरूदेव का संदेश पाते ही समय पर पहुंच गये।

अमृतसर में योगियों का आगमन

गुरू गोरख नाथ के शिष्य बाहरा पंथों में विभाजित हो चुके थे। प्रत्येक पंथ की अपनी विचार धारा और अपनी -अपनी मर्यादा हुआ करती है इन में से एक पंथ तीर्थ यात्रा इत्यादि में बहुत विश्वास करता है। वे लोग भ्रमण करते हुए एक समुह के रूप में लाहौर आये। वहों उन को ज्ञात हुआ कि इन दिनों श्री गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी के रूप में श्री गुरू रामदास जी मानव कल्याण के कार्यो में व्यस्त है और वह एक नया नगर बसा रहे है जो कि निकट ही है। बस फिर क्या था? इन नाथ पंथियों के हृदय में गुरूदेव द्वारा तैयार नये नगर को देखने तथा उन से मिलने की तीव्र इच्छा हुई। वे 'गुरू के चक्क' (अमृतसर) पहुंचे। गुरूदेव ने उन का हार्दिक स्वागत किया। इन नाथ पंथियों को लोग सिद्ध अथवा योगी कहते थे। इन की विचारधारा में गृहस्थ में रहते मनुष्य को मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। जब इन्होंने 'गुरू के चक्क' में अमृत सरोवर तथा नगर का वैभव देखा तो इन के हृदय में बहुत सी जिज्ञासाएं उत्पन हुई। वे अपनी विचारधारा के विपरीत वातावरण देखकर आश्चर्य में आये और अपने मन के संशय लेकर गुरूदेव के सम्मुख उपस्थित हुए। योगियों ने गुरूदेव से कहा-आपने माया के प्रसार के कार्य प्रारम्भ किये हुए है जब कि मोक्ष माय के त्याग से मिलता है? उत्तर में गुरूदेव ने कहा- प्रकृति की उत्पति सब माया ही है, इस के बिना विकास सम्भव ही नहीं। विकास के बिना मानव सभ्यता फूले-फलेगी कैसे? सभ्यता के विकास के बिना मोक्ष का क्या अर्थ है? वास्तव में मोक्ष प्रकृति के नियमों को समझने में है यह तभी सम्भव है जब मानव सभ्यता का विकास हो। बस हम वहीं कार्य करते है जिससे जन-साधारण को सहज में ज्ञान प्राप्ति हो जाए। इस पर गुरुदेव को योगी कहने लगे आप अपने शिष्यों (सिक्खों) को अष्ट योग तो सिखलाते नहीं उसके बिना मन वश में नहीं आ सकता और भटकना मिट नहीं सकती। मन की शांति के बिना आत्म दर्शन नहीं होता। आत्म दर्शन के बिना युगति नहीं और युक्ति के बिना मुक्ति नहीं मिलती। उत्तर में गुरुदेव ने कहा-हमारे शिष्य केवल भक्ति द्वारा प्रभु को रिझा लेते हैं इस लिए उन को किसी प्रकार का हठ योग करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। भक्ति मार्ग जहां सहज है वहां इससे प्राप्तियां भी अधिक हैं। आप लोग वर्षो कड़ी साध ना अथवा तप से जो प्राप्त नहीं कर पाते। ये साधारण दिखने वाले सिख केवल अंत:करण में बसे प्रभु प्रेम से उस की प्रातकाल (अमृत बेला) में स्तुति करते हैं। जिससे हृदय निर्मल हो जाता है। हृदय की पवित्रता ही ज्ञान की प्राप्ति का कारण बन जाता है। यही ज्ञान इन को माया में रहते हुए भी माया से उपराम रहना सिखा देता है। जैसे नाव पानी में रहते हुए पानी में नहीं डूबती। ठीक वैसे ही हमारे सिख गृहस्थ में जीवन यापन करते हुए माया के बंधनों से मुक्त रहते हैं। इस प्रकार उनके आस-पास का वातावरण भी शुद्ध हो जाता है और वे अपने आध्यात्मिक रंग से दूसरे लोगों को भी खुशियां बांटते है।

उन योगियों को गुरूदेव के कथन में सत्य प्रतीत हुआ और वह उनको नमस्कार करके चले गये।

सेवक अथवा भक्त के लक्षण

श्री गुरू राम दास जी के दरबार में एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया कि भक्त में क्या-क्या गुण अथवा लक्षण होने चाहिए? प्रश्न सुनकर आप गम्भीर हो गये और कहने लगे सर्वप्रथम किसी पूर्ण पुरूष के जीवन चरित्र को अध्ययन करके उसके अनुसार स्वयं भी जीवन जीना चाहिए। यदि ऐसा सम्भव न हो सके तो प्रभु के सेवक को प्रभु के भाणे में रहना चाहिए तात्पर्य यह कि 'राज़ी विच रज़ा दे' अर्थात प्रभु के कार्यो पर किन्तु परन्तु न कर उस की लीला में प्रसन्ता व्यक्त करनी चाहिए। सुख-दुख दोनों, एक सम जानकर अडोल रहना चाहिए, भाव यह कि हर्ष, शोक से न्यारे रहते हुए कभी भी विचलित नहीं होना चाहिए दोनों अवस्थओं को प्रभु द्वारा प्रदान निधि समझते हुए उस पर सन्तोष व्यक्त करना चाहिए। दूसरे गुण में भक्त गण को मन की मति और अहं को त्याग कर प्रभु को समर्पित होकर समस्त प्राणी मात्र की सेवा बिना भेदभाव करनी चाहिए। तीसरे गुण में निष्कामता होनी चाहिए अर्थात सेवा के बदले किसी फल की इच्छा न कर केवल प्रभु से स्नेह ही एक मात्र मनोरथ होना चाहिए। इसी विषय को आपने जन-साधारण का मार्ग दर्शन करने हेतु अपनी वाणी में इस प्रकार व्यक्त किया जिस से सदैव भक्तजनों का पथ प्रदर्शन हो सके।

जे सुखु देहि त तुझहि अराधी दुखि भी तुझै धिआई।।
जे भुख देहि त इत ही राजा दुखु विचि सूख मनाई।।
तनु मनु काटि काटि सभु अरपी विचि अगनी आपु जलाई।।
परवा फेरी पाणी ढोवा जो देवहि सो खाई
नानकु गरीबु ढहि पइआ दुआरै, हरि मेलि लैहु वडिआई।।

वास्तव में गुरूदेव ने स्वयं अपना समस्त जीवन अपने बड़े गुरूजनों के पदचिन्ह पर अधारित कर, करनी-कथनी में समानता लाकर जन-साधारण के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया था। उनके सम्मुख श्री गुरू अंगद देव जी तथा श्री गुरू अमर दास जी की सेवा, निष्ठा-भक्ति आर्दश मार्ग था।

भाई माणिक चंद और उनके मित्रगण

श्री गुरू रामदास जी के दरबार 'गुरू के चक्क' (अमृतसर) में दूर-दूर से संगत आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के अभिलाषा से आती। भाई माणिक चंद जी गुरू घर से बहुत लम्बे समय से जुड़े हुए थे। वह प्रायः आपनी आध्यात्मिक मार्ग के पांधी मित्रों को साथ लेकर गुरू दरबार में उपस्थित होते थे और अपनी अध्यात्मिक उल्झनों का समाधान पाकर घर लोट जाते थे। वह इस बार कुछ अन्य मित्रों के संग गुरू दरबार में पधारे। उनके मित्र पारो जी व बिशन दास जी की जिज्ञासा थी कि मनुष्य को इसी जीवन में गृहस्थ में रह कर कैसे जीवन मुक्ति प्राप्त हो सकती है?

यह प्रश्न समस्त जिज्ञासुओं के लिए उपयुक्त था। अतः गुरूदेव ने कहा-यदि हम आवागमन का चक्र समाप्त कर कल्याण चाहते है तो हमें सदैव मन पर नियन्त्रण करना होगा और उसे इस विधि से साधना है कि हमारी तृष्णाएं समाप्त हो जाएं। प्रभु के हर कार्य में सन्तुष्टि व्यक्त करें कभी भी विचलित न हो। जहां तक माया के बन्धनों का प्रश्न है - माया का बहुत विस्तृत स्वरूप हमारे चारों ओर छाया हुआ है इस में चल-अचल सम्पति के अतिरिक्त रिश्ते-नाते आ जाते है। इन के उपराम रहने से एक ही विधि है हम इनको आपना न मान कर, प्रभु द्वारा दिया गया कुछ समय का संयोग ही समझे। जैसे कई बार यात्रा करते समय यात्री नाव अथवा गाड़ी में इकट्ठे बैठ कर यात्रा करते है किन्तु यात्रा समाप्त होने पर तुरन्त बिछुड़ जाते है कोई भी एक-दूसरे से लगाव नहीं रखता ठीक इसी प्रकार हम किसी भी निकट वर्ती से मन का बंधन न बनाएं अर्थात विरिक्त रहने में ही कल्याण है। राग दुवेष ही पुनर जन्म का कारण बनता हैं।

भाई पदाथु,तारू व भारू राम जी

श्री गुरू राम दास जी के दरबार में यहां संसारिक सुख चाहने वालो का तांता लगा रहता, वहीं दूर-दूर प्रांतों से आध्यात्मिक प्राप्तियां के लिए भी जिज्ञासु बड़े पैमाने पर आते रहते। गुरूदेव से प्रायः जिज्ञासुओं के प्रश्न होते कि आप द्वारा दर्शाया गया मार्ग अन्य धार्मिक पुरूष कहलाने वालों से बिलकुल विपरीत है। आप कहते है गृहस्थ में सभी कर्तव्य करते हुए कल्याण हो सकता है जब कि समाज में यह धारणा प्रचालित है कि प्रभु प्राप्ति अथवा आत्म कल्याण के लिए घर-गृहस्थी के सभी कार्यो को त्याग कर एकांत वास अथवा वनवास में संन्यास लेकर जाना अति आवश्यक है?

इसी प्रकार का प्रश्न भाई पदारथु भाई तारू और भाई भारू राम ने किया कि हे गुरुदेव जी! कोई सहज मार्ग बताए जिसे हमें बनों में भटकना न पड़े। अथवा भिक्षा मांग कर उदर पूर्ती के लिए दर-दर हाथ न पसारने पड़े। तत्कालीन ज्वलत समस्या को ध्यान में रखकर गुरूदेव ने उन का मार्ग दर्शन करने हेतु समस्त संगत को सम्बोधन करते हुए प्रवचन कहे-हे जिज्ञासुओं! आध्यात्मिक दुनियां में शरीर गौण है केवल शरीर से किये गये कार्य फलीभूत नहीं होते जब तक कि उसमें मन भी सहयोगी न हो। यदि हमने शरीर से गृहस्थ त्याग भी दिया तो उस का क्या लाभ जबकि मन में वैराग्य उत्पन नहीं हुआ। मन तो चंचल है वह कभी भी भटक सकता है और उसके विचलित होते ही शरीर द्वारा किये गये कार्य निष्फल हो जाते है। यदि आप मन पर अंकुश रखना चाहते है तो वह गृहस्थ आश्रम ही है जहां मन के भटकने की सम्भावना क्षिण हो जाती है क्योकि संसारिक कर्तव्यों के बोझ उसको भटकने नहीं देते और मन ने भटकना भी किस के लिए है जब कि सभी साधन गृहस्थ में उपलब्ध रहते है। इसके विपरीत तथाकथित संन्यासी बार-बार पथ भ्रष्ट होते देखे गये है। यदि हम मान भी ले कोई पूर्ण वैराग्य को प्राप्त व्यक्ति संनयासी जीवन व्यतीत करता है तो भी उस द्वारा अर्जित योग फल का अंधिकांश भाग वह गृहस्थी ले जाते है जो उसकी सेवा करते

है अथवा भोजन व्यवस्था करते है। इस प्रकार संन्यासी कठिन साधना करने के पश्चात् भी वंचित ही रह जाता है।

गुरूदेव ने संगत को बताया कि गुरमति गाड़ी राह (विशाल मार्ग) है इस लिए यह बहुत सहज-सरल है इसे कोई भी मानव बिना किसी कठनाई के अपना सकता है यदि कोई पुरातन पंथी इस का उपहास करता है तो जान लो वह अनजान-नसमझ है उसे पूर्ण सत्गुरू की प्राप्ति नहीं हुई।

भाई महांनंद जी व विधीचन्द जी

श्री गुरू रामदास जी के दरबार में दो मित्र महा नंद जी व बिधीचंद जी उपस्थित हुए। कई दिन गुरूदेव के प्रवचन श्रवण करते रहे इस बीच उनके हृदय मे बसी कुण्ठा का समाधान हो गया। वे सन्तुष्ट थे इसलिए उन्होंने गुरूदेव के समक्ष संशय रखा कि हमें अपने निजि स्वरूप के दर्शन किस प्रकार हो सकते है अर्थात हमारा अंत:करण सदैव हर्ष उल्लास में आनंदित रहे? वह कौन सी विधि है कृप्या मार्ग दर्शन करें।

उत्तर में गुरूदेव मुस्कुराए और कहा-आपने तत्व ज्ञान की बात पूछी है यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। आवागमन के चक्र से छुटकारा पाने का इसी में रहस्य छिपा हुआ है, बस इस प्रकार समझ लो कि इस प्रश्न का उत्तर ही शाश्वत ज्ञान प्राप्ति का मार्ग है। वह प्रभु एक विशाल दिव्य ज्योति है जो कण-कण में विद्यमान है। हम भी उसी ज्योति का एक अंश मात्र है, जो हमारे में जीवन के लक्ष्ण दिखाई देते है, यह उसी ज्योति पुंज के कारण है। यदि वह हमारे में से अपनी सत्ता का अंश निकाल लेता है तो हमें मृत घोषित कर दिया जाता है, इस का अर्थ यह हुआ कि हमारी काया केवल एक मिट्टी का पुतला है जो परम ज्योति के अंश के विद्यमान रहने से कार्यशील दृष्टिगोचर होती है। दूसरे शब्दों में हम शरीर नहीं है। शरीर तो नश्वर है इसमें विद्यमान ज्योति पुंज का अंश ही हम है अर्थात वही आत्मा है जो कि अमर है यही आत्मा बार-बार नया शरीर धारण करती रहती हैं जब तक कि पुन: परम ज्योति में विलय नहीं हो जाती।

विधी चन्द जी - हमारी आत्मा क्यों भटकती रहती है अर्थात बार-बार नये नये रूपों में शरीर धारण करती रहती है?

गुरूदेव- इसके दो मुख्य कारण है। पहला-जीव-आत्मा मिथ्या अभिमान करती रहती है अर्थात वह स्वयं को सभी कायों का करता मानती रहती है और इसी अभिमान में फंसी रहती है। बस यही कर्म उसके पुर्नजन्म का कारण बनते है। इस के विपरीत यदि जीव-आत्मा को यह ज्ञान दृढ़ हो जायें कि मैं एक माट्टी का पुतला मात्र हूं जो भी मुझे द्वारा हो राह है वह उस परम तत्व द्वारा क्रियान्वित करवाया जा रहा है, मैं तो केवल काठ की पुतली मात्र हूं मेरी डोरी एक आदृश्य शक्ति के हाथ है तो यह मिथ्या अभियान समाप्त होकर, मैं-मैं के स्थान पर तूही-तूही हो जाता हैं। इस प्रकार क्रतूत्वा अभिमान समाप्त होते ही जीवात्मा को कर्मो के बन्धनों से छुटकारा मिल जाता है।

दूसरा-तृष्णा का बन्धन जीव आत्मा को पुनर जन्म लेने पर विवश करता है। दूसरे शब्दों में जीव आत्मा माया जाल से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाता।

महानंद जी-माया के विस्तृत स्वरूप के विषय में बताएं? और इस से छुटकारा किस विधि से प्राप्त हो सकता है?

गुरूदेव - वे सभी वस्तुएं और वे सभी रिश्ते माया जाल है जिनको प्राप्त करने अथवा भोगने में मन में इच्छा बनी रहे। भले ही प्राप्ति का साधन कोई भी हो। माया के बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करना केवल तृष्णा को सहज-सहज समाप्त करना ही युक्ति है। जब तृष्णा समाप्त हो जाए तो समझ लो आपने जीवन मुक्ति के मार्ग में एक उपलब्धि कर ली है। इस त्याग को समझने के लिए किसी ऐसी युवती के मन की अवस्था का अध्ययन करना चाहिए जो अपने प्रियतम से मिलने अपने मायके से ससुराल जाने की तैयारी करती है। अर्थात वह क्षण भर में सभी रिश्ते नातों का बन्धन तोड़ नहीं व्यवस्था को सहर्ष स्वीकार कर लेती है।

विधि चन्द जी - गुरूदेव जी कृप्या बताएं कि जब सभी में उस प्रभु की महा ज्योति का अंश है तो हम एक-दूसरे से भिन्ता क्यों पाते है?

गुरूदेव - यह शतप्रतिशत सत्य है कि जीव आत्मा परम ज्योति का अंश है, केवल अंतर कई जन्म के संसकारों के कारण बनता चला जाता है क्योंकि जीव कर्मो के लिए स्वतन्त्र है उस द्वारा किये गये अच्छे-बुरे कर्मो का प्रभाव उसके संस्कारों की सृजना करता है जिससे जीव-जीव में अन्तर बनता चला जाता हैं इस बात को समझने के लिए हम मोमबती के सामने अलग-अलग रंग के कांच के टूकड़े रखे तो हमें भिन्न-भिन्न रंग का प्रकाश प्राप्त होगा जब कि हम जानते है मोमबती की ज्योति पुंज मे प्रकाश केवल एक ही रंग का है। यदि हम चाहे हमें प्रकाश ज्योति पुंज एक जैसा प्राप्त हो तो हमें कांच के टूकड़ो को स्वच्छ करना होगा अर्थात उसका रंग हटाना होगा। यहीं क्रिया मनुष्य को भी अपने पूर्व संस्कारो को समाप्त करने के लिए अपने हृदय रूपी दर्पण को स्वच्छ करने के लिए करनी होती है इस की विधि साध-संगत में आकर गुरू चरणों में बैठ कर सीखनी होती है। गुरूदेव नाम-बाणी का अभ्यास करवाते है। यही नाम रूपी अमृत हृदय रूपी दर्पण को धीरे-ध

रे मलीन संस्कारों के प्रभाव से धो डालता हैं। जिस से परम तत्व के अंश का हमारे भीतर विकास प्रारम्भ हो जाता है। जैसे-जैसे उस परम तत्व के अंश का हमारे भीतर तेज बढ़ेगा वैसे वैसे हमारे आत्म बल में वृद्धि होती चली जाती है।

महानंद जी- गुरूदेव जी! देह-अभिमान से कैसे छुटकार प्राप्त किया जाये? कृप्या इस विषय पर प्रकाश डाले।

गुरूदेव - हम सभी जानते है यह शरीर हमने न खरीदा है न हीं बनाया है। यह तो हमें प्रकृति द्वारा उपहार स्वरूप में प्राप्त हुआ है अत: जब हम उस प्रभु अथवा प्रकृति के अभारी होंगे। अथवा कृतिज्ञता व्यक्त करेंगें तो हमें एहसास हो जाएगां हम देह नहीं हैं हमें यह शरीर कुछ वर्षो के लिए मकान रूप में दिया गया हे जिस का हमने सद्पयोग करना है।

लाहौर नगर की संगत का निमंत्रण

श्री गुरू राम दास जी को प्राय: लाहौर की संगत निमंत्रण भेजती कि आप यहां पधारे और स्थानीय जन साधारण के उत्थान के लिए कोई विधिवत कायक्रर्म चला कर उन का मार्ग दर्शन करें। गुरूदेव ने संगत की प्रबल इच्छा को ध्यान में रखकर लहौर जाने का कार्यक्रम बनाया। जब आप वहां पहुंचे तो आप के स्वागत के लिए जन समुह उमड़ पड़ा। आप के चचेरे भाई सिहारी मल जी ने अगवानी की और अपने यहां प्रीती भोज दियां संगत में से कुछ श्रद्दालुओं ने आप को क्रमवार अपने यहां प्रीतिभोज पर आमंत्रित करना प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप आप जिज्ञसुओं के उद्धार के लिए दरबार लगाकर प्रवचन करते। आप के प्रवचनों के विषय प्राय: सेवा, भक्ति, परोपकार, दया, उदारता, त्याग इत्यादि ही होते जिस से लाहौर निवासी गद्गद् हो उठे। आप ने पेयजल की कमी को ध्यान में रखते हुए एक विशाल कूआं भी निर्माण करने के लिए धन की व्यवस्था कर दी। संगत द्वारा श्रमदान(कारसेवा) बहुत जल्दी धर्मशाला जब तैयार हो गई तो आप जी ने गुरू के चक्क जैसी प्रथा यहां भी प्रारम्भ कर दी। प्रात: काल (अमृत बेला) में आसा की वार का कीर्तन होता तत्पश्चात गुरूदेव स्वयं सगंत मे प्रवचन करते और हरियश द्वारा नामदान देकर प्रत्येक प्राणी को दृढ़ कर बाते करवाते। वे लोग जो कभी आप को गोइवाल में बावली के निर्माण में कारसेवा अथवा मिट्टी की टोकरी ढोते हुए देखकर गुरू अमर दास जी को ताना देकर आये थे कि आप अपने दामाद से ससुराल में मज़दूरी करवा रहे है। इन दिनों आप का प्रताप देखकर चरणों में गिर पड़े और अपनी भूल के लिए क्षमा याचना करने लगे।

इसी बीच आप को एक सिख मिलने आया उसने आपके समक्ष अपनी व्यक्तिगत घरेलू समस्या रखी और बताया कि मेरे चाचेरे भाईयों ने मेरे विरूध षड़यन्त्र रच कर मेरी भूमि हथिया ली है। उन्होंने बहुत से सरकारी क्रमचारियों के साथ भी मिली-भक्त कर ली है अत: उन का पक्ष भारी है। जबकि मैं सत्य पर हूं किन्तु मेरा पलड़ा हल्का है।

गुरूदेव ने उसे सांत्वना दी और कहा-जब मानव शक्ति काम न करें तो सत्यवादी को केवल उस प्रभु की शरण ही लेनी चाहिए। इन गुटबन्दी के चक्रव्यू से बाहर निकल कर सर्वशक्तिमान की अराधना ही फलदायक है। प्रभु सदैव अपने भक्तों की लाज रख लेता हैं। तभी गुरूदेव ने निम्नलिखित रचना उच्चारण की।

किसही धड़ा कीआ मित्र सुत नाल भाई।।
किसही धड़ा कीआ कुड़म सके नाल जवबाई।।
किसही धड़ा कीआ सिकदार चउधरी नाली आपणे सुआई।।
हमारा धड़ा हरि रहिआ समाई।।1।।
हम हरि सिउ धड़ा कीआ मेरी हरिटेक।।
मै हरि बिन परवु धड़ा अवरू न कोई,
हउ हरि गुण गावा असरंव अनेक ।।2।। रहाउ।।

राम आसा, घर 2 महला 4।। पृष्ठ

श्री (गुरू) अर्जुन देव जी का विवाह

श्री गुरू राम दास जी ने अपने बड़े बेटे पृथी चन्द का विवाह समय अनुसार कर दिया जब मजले पुत्र का विवाह करना चहा तो उस ने विवाह करवाने से इन्कार कर दिया और कहा मैं संसारिक झमेलों में नहीं फंसना चहाता क्योंकि मैं समस्त समय प्रभु अराधना में व्यतीत करना चाहता हूँ। इस पर गुरूदेव ने उसे गृहस्थ आश्रम के बहुत लाभ बताए, और समझाने का प्रयास किया कि व्यक्ति को गृहस्थ में रहते हुए संन्यासियों से कहीं अधिक प्राप्तियां होती हैं किन्तु श्री महादेव जी नहीं माने, उत्तर में उन्होंने कहा- मैं संसार से उपराम ही रहना पसन्द करता हूँ। उन्हीं

दिनों फलोर तहसील के निवासी श्री किशन चंद जी गुरू दर्शनों को 'गुरू के चक्क' (अमृतसर) आये तो उन्होंने गुरूदेव के छोटे पुत्र श्री अर्जुन देव को देखा और उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए। श्री अरजन देव जी मधुर भाषी, नम्र तथा सेवा में समर्पित थे अतः किशन चन्द जी के हृदय में एक उमंग उठी कि यह गुरू पुत्र यदि मेरी बेटी कुमारी गंगा देवी को वधू रूप में स्वीकार कर ले! यदि यह रिश्ता गुरूदेव को स्वीकार्य हो तो? बस फिर क्या था उन्होंने यह अभिलाषा गुरूदेव के सम्मुख रखी। गुरूदेव ने बहुत सहज ही में अपने सिख की पुत्री का रिश्ता स्वीकार कर लिया किन्तु विवाह एक वर्ष बाद होना निश्चित हुआ। विवाह के समय श्री अर्जुन देव जी 17 वर्ष के हुष्ट पुष्ट युवक के रूप में उबरे जिनकी छबी देखते ही बनती थी। गुरूदेव बारात लेकर फलोर तहसील के माऊ नामक ग्राम में पहुंचे। वहां बारात का भव्य स्वागत किया गया किन्तु स्थनीय पण्डितों ने फेरे डलने के समय गुरू मर्यादा पर व्यंग कर दिये और अभिमान में कटाक्ष करते हुए कहा - आखिर जाओंगे कहां? विवाह मण्डप में तो हमारी आवश्यकता पड़ ही गई ना! गुरूदेव को पण्डितों के व्यवहार के पहले भी बहुत कड़वे अनुभव थे। अतः उन्होंने समय को सम्भाला और तुरन्त स्वयं उस चुनौती को स्वीकार करते हुए आगे बढ़ कर पुरोहित का स्थान ग्रहण कर लिया और नेत्र बन्द कर के प्रभु के समक्ष प्रार्थना करते हुए निम्नलिखित शब्द उच्चाराण करने लगे।

कीता लोड़ऐ कंमु सु हरि पहि आरवीऐ।।
कारजु देह सवारि सतिगुर सचु सारिवऐ।।
संता सगि निधानु अंम्रित चारवीऐ।।
भै भंजन मिहरवान दास की रारवीऐ।।
नानक हरि गुण गाइ अलरवु प्रभु लारवीऐ।। पृष्ठ 91

गुरूदेव को विस्मयादि बोधक अवस्था में देरवकर समस्त सिरव आश्चर्य करने लगे तभी प्रमुरव शिष्यों ने गुरूदेव का संकेत पाते ही स्थिति को भाप लिया और वर-वधू को हवन कुण्ड से उठारक अन्ये स्थान पर ले गये। इस पर समागम में रवल-बली मच गई। समधी इत्यादि लोग गुरूदेव को तुरंत मनाने आये और उन्होंने पण्डितों द्वारा की गई अवज्ञा के लिए याचना की परन्तु गुरूदेव ने कहा, मैं किसी से भी अप्रसन्न नहीं हूं। प्रभु की लीला है, ऐसा ही होना था। वह हम से कुछ नया करवाना चाहता है जैसी उस की इच्छा, हम उसी में सतुष्ट है।

गुरूदेव ने तुरन्त निर्णय लिया पुनः वर-वधु को नये स्थान में बिठाकर उनके मध्य पुर्व गुरूजनों की वाणी की पोथी स्थापित कर स्वयं गुरू मर्यादा के नियमों को दृढ़ करवाने के लिए प्रवृति कर्मो की वाणी द्वारा व्यारव्या करने लगे।

हरि पहिलड़ी लावं परविरति करम दृिड़ाइआ बलिराम जीउ।।
बाणी ब्रहम वेदु धरम द्रिड़हु पाप तजाइया बलिराम जीउ।।
धरमु दृड़हु हरि नामु धिआवहु सिम्रिति नामु द्रिड़ाइआ।।
सतिगुरु गुरू पूरा आराधहु सभि किलविरव पाप गवाइआ।।
सहज अनंदु होआ वडभागी मनि हरि हरि मीठा लाइआ।।
जनु कहै नानकु लाव पहिली आरंभ काजु रचाइआ।।1।।

तद्पश्चात आप ने आदेश दिया यही रचना सभी संगत मिल कर गायन करे और वर-वधू पोथी साहब की परिक्रमा करे। पहली परिक्रमा समाप्त होने पर गुरूदेव ने फिर दूसरी लांव को उच्चारण करते हुए प्रवृति मार्ग में निवृति की बात दृढ़ करवाई और आदेश दिया अब इस रचना को संगत गायन करे और वर-वधू पोथी साहब के फेरे लेवे।

हरि दूजड़ी लाव सतिगुरु पुररवु मिलाइआ बलिराम जीउ।।
निरभउ भै मनु होइ हउमै मैलु गवाइआ बलिराम जीउ।।
निरमलु भउ पाइआ हरि गुण गाइआ हरि वेरवै रामु हदुरे।।
हरि आतम रामु पसारिआ सुआमी सरब रहिआ भरपूरे।।
अंतरि बाहरि हरि प्रभु ऐको मिलि हरि जन मंगल गाए।।
जन नानक दूजी लाव चलाई अनहद शबद वजाए।।2।।

इस प्रकार गुरूदेव जी ने चार लांवा की रचना कर दी और क्रमश: चार बार वर-वधु ने पोथी साहब की परिक्रमा कर ली। तत्पश्चात गुरूदेव ने कहा -अब इस जोड़ी का विवाह सम्पुर्ण हुआ और यह दोनों दाम्पति बन गये है और गृहस्थ आश्रम में प्रवेश पा चुके है। तभी सभी ओर से बधाईयां मिलने लगी समस्त संगत प्रसन्न थी किन्तु पुरोहित अपना सा मुंह लेकर निराश बैठे उस घड़ी को कोस रहे थे जब उन्होंने गुरू घर पर व्यगं किया था। इस घटना के पश्चात् गुरूदेव ने आदेश दिया कि मेरे सिख हमारे द्वारा दृढ़ाई गई नयी विधि से अपनी संतानो का विवाह सम्पन्न किया करें जहां इसी नयी विधि द्वारा पुरोहितों की मोहताजी से छुटकारा मिलेगा वहीं दाम्पति को गुरू मर्यादा दृढ़ होगी और समाज से कुरीतियां समाप्त होने में सहायता मिलेगी।

श्री अरजन देव जी का लाहौर प्रस्थान

श्री गुरू राम दास जी को उनके ताऊ के लड़के श्री सिहारी मलजी लाहौर नगर से मिलने 'गुरू के चक्क' आये और उन्होंने गुरूदेव को निमन्त्रण दिया कि मेरे बेटे अर्थात आप के भतिजे का शुभ विवाह है कृप्या इस शुभ अवसर पर आप हमारे यहां पधारे गुरूदेव ने उन का हार्दिक स्वागत किया और उन को समझाते हुए कहा - कि हमारे वहां आने पर स्थानीय संगत आयेगी जिस से भीड़ होने की सम्भावना है जो कि विवाह में बाधक सिद्द हो सकती है। अत: हम स्वयं न पहुंच कर अपने बेटे को अपने प्रतिनिधि के रूप में भेज देंगे। सिहारी मल जी यह अश्वासन प्राप्त कर वापस लाहौर चले गये। विवाह के निर्धारित समय पर पहंचने के लिए गुरूदेव ने अपने बड़े पुत्र पृथीचन्द को बुलाया ओर आदेश दिया कि तुम लाहौर चले जाओ और वहां अपने चचरे भाई के विवाह में सम्मिलित हो कर हमारा प्रतिनिधित्व करें। किन्तु पृथी चन्द ने गुरूदेव का आदेश नहीं माना और कई प्रकार के बहाने बना कर आना कानी करने लगा। उसने गुरूदेव से कहा -यहां सरोवर का निर्माण कार्य चल रहा है सभी प्रकार की व्यवस्था मुझे करनी होती है कई प्रकार के लेन-देन है इन सभी में मेरे जाने से बाधा उत्पन्न हो जाएगी। अत: आप किसी अन्य व्यक्ति को भेज दे। गुरूदेव उस के उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुए। वह जानते थे कि पृथी चन्द कपटी है इसके मन में संगत द्वारा भेंट मे दिये गये धन को संग्रह करने की लालसा तीव्र हो उठी है और इस की सेवा केवल छलावा मात्र है। इसके सभी कार्यो में प्रेम नहीं स्वांग छिपा रहता है। इस पर गुरूदेव ने अपने मंझले पुत्र श्री महादेव को उत्सव में सम्लित होने के लिए आदेश दिया। श्री महादेव जी सांसारिक उत्तरदायित्वों से प्राय: दूर ही रहते थे। उनके लिए विवाह आदि उत्सव महत्व हीन थे। उन्होंने पिता श्री की आज्ञा को मुक्त भाव से स्वीकार नहीं किया। गुरूदेव दोनों बड़ों पुत्रों के व्यवहार से तनिक खिन्न हो उठे। प्रश्न लाहौर गमन का नहीं था। प्रश्न तो आज्ञाकारी पुत्र का था?

इस बार पिता गुरूदेव ने सबसे छोटे पुत्र अर्जुन देव को लाहौर से प्राप्त निमन्त्रण की बात की। किशोर (तरूण) अरजन गद्‌गद हो उठे। वह पिता गुरूदेव के चरणों में नतमस्तक हो कर बोले। यह तो बहुत प्रसन्नता की बात है। आप मुझे उत्सव में भाग लेने के लिये आदेश दे रहे है यह मेरा परम सौभाग्य है। किशोर अरजन देव की नम्रता और गुरू-आदेश के प्रति दृढ़ निष्ठा देख कर गुरूदेव प्रसन्न हो उठे। उन के मन से एक बड़ा बोझ उतर गया। लाहौर प्रस्थान के समय उन्होंने अरजन देव को पुन: संकेत दिया, विवाह सम्पन्न होने पर वहीं संगत में गुरमति का प्रचार-प्रसार करने की सेवा का कार्य सम्भालना। इधर लौटने के लिए संदेश भेजा जायेगा। आज्ञाकारी पुत्र अरजन देव ने पिता गुरूदेव को नम्रता पूर्वक नमस्कार किया और लाहौर प्रस्थान कर गये।

विवाह के सुखद वातावरण से मुक्त होने पर श्री अरजन देव जी ने लाहौर में धर्म-प्रचार का कार्य आरम्भ कर दिया। उन्होने उसी धर्मशाला को अपना केन्द्र बनाया जो पिता श्री गुरू राम दास जी के पूर्वजों का कभी घर था। चुना मण्डी को अपना कीर्तन-स्थल बनाकर सम्पूर्ण नगर में अध्यात्मिक जागृति का अभियान चला दिया। इस भक्ति लहर से स्थानीय सूफी फकीर इत्यादि प्रभावित होकर श्री अरजन देव जी के सर्म्पक में आये।

साई मियां मीर तथा शाह हुसैन उनके घनिष्ट मित्र बन गये अधिकांश समय पीरों और फकीरों से विचार-विनिनय में ही व्यतीत हो जाता। वह जानते थे सचा धर्म संकीर्णता नहीं सहिष्णुता है। अत: उन्हें सब धर्मो में एक ही ज्योति के दर्शन होते। यही से उन्हें एक सर्वमान्य नये ग्रन्थ की उत्पति की प्रेरणा प्राप्त हुई।

लाहौर में श्री अरजन देव को अपने पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों से काफी समय से बिछुड़े रहे। अत: लम्बे वियोग और एकान्त ने श्री अरजन देव जी को सम्वेदन शीलता प्रदान की। पिता के दर्शनों की अभिलाषा से मन में विराग मय वाणी फूट पड़ी। वियोग की पीड़ा आत्मीय काव्य में आंसू उण्डेल देती और वह हर पल गुरूदेव पिता के आदेश के प्रति समर्पित होकर प्रतिक्षा करते कि शायद आज मेरे लिये बुलावे का संदेश आयेगा। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इस पर वह एकान्त क्षणों में विचार मग्न हो सोचतें। क्या पिता गुरूदेव उसके सेवाभाव से सन्तुष्ट नही? अत्यंत कशमकश के क्षणों मे अपनी अन्तरात्मिक पीड़ा को उन्होंने सरस शब्द परिधान करते हुए अत्यंत मार्मिक व आत्मर्स्पशी पत्र पिता गुरूदेव

के लिए लिखा और उसे एक सेवक के हाथ 'गुरू के चक्क' (अमृतसर) भेज दिया।

मेरा मनु लोचै गुर दरसन ताई।।
बिलप करे चात्रिक की निआई।।
त्रिखा न उतरै सांति न आवै बिनु दरसन संत पिआरे जीउ।।

यह सेवक जब अमृतसर पहुंचा तो गुरू दरबार में बहुत भीड़ थी तभी उसे पृथी चन्द मिल गये। उसने वह पत्र पृथी चन्द को सोप दिया। पृथी चन्द ने उस सेवक का खूब आदर किया और मध्यान्तर के पश्चात् उसे अपनी ओर से झूठ में ही कह दिया कि गुरू पिता जी कह रहे है अरजन कुछ दिन वहीं ओर रूक के सिक्खी प्रचार करें हमें जब आवश्यकता होगी उनको वापस बुला लेंगे।

पृथी चन्द ने जब वह पत्र काव्य रूप में पढ़ा तो उसे भय हुआ कि यदि पिता जी ने यह हृदय वेदक पत्र देख लिया तो वह अरजन को योग्य जानकर कही उसे ही अपना उत्तराधिकारी न नियुक्त कर दें। अत: उसने तुरन्त वह पत्र छिपा लिया और उसके विषय में पिता गुरूदेव को कुछ भी नहीं बताया।

लगभग एक माह व्यतीत होने के पश्चात जब श्री अरजन देव को लाहौर से वापसी का कोई संदेश प्राप्त नहीं हुआ तो उन्हें चिंतां हुई कि कहीं मुझ से पिता गुरूदेव अप्रसन्न तो नहीं। तरूण श्री अरजन देव के मन में अनेक प्रकार की सम्भावनाएं जन्म लेती। किन्तु उन्होंने सहास बटोर के पिता जी को एक अन्य पत्र लिख भेजा।

तेरा मुखु सुहावा जीउ सहज धुनि बाणी।।
चिरु होआ देखे सारिंगपाणी।।
धनु सु देसु जहा तूं वसिआ मेरे सजण मति मुरारे जीउ।।

वही सेवक यह पत्र भी लेकर गुरू के चक्क (अमृतसर) पहुचा। पृथी चन्द ने उसे देखते ही भाप लिया कि वह कोई पत्र अथवा संदेश लाया है इस लिये उन्होंने उसे बहला-फूसला कर दूसरा पत्र भी उससे प्राप्त कर लिया और उसे फिर उसी प्रकार कह दिया कि पिता जी का आदेश है कि अरजन अभी कुछ दिन ओर लाहौर मे रह कर सिक्खी प्रचार करें। सेवक उत्तर लेकर वापस लाहौर पहुंचा और उसने श्री अरजन देव जी को बताया कि आप के बड़े भाई जी मुझे पहुंते ही मिल गये थे उन्होंने मुझ से पत्र दबाव डालकर ले लिया। मुझे गुरूदेव से मिलने ही नहीं दिया और वही संदेश पुन: दिया है। इस पर अरजन देव जी को अशंका हुई, पिता जी तक पत्र पहुंचता भी है कि नहीं, कहीं बड़े भाईयां पिता जी को पत्र दिखाते ही न हो? कुछ दिन प्रतीक्षा करने के पश्चात् श्री अरजन देव जी ने तीसरा पत्र अपने पिता गुरूदेव को लिखा -

इक घड़ी न मिलते ता कलिजुगु होता।।
हुणि कदि मिलीऐ प्रिअ तुधु भगवंता।।
मोहि रैणि न विहावै नीद न आवै बिनु देखे गुर दरबारे जीउ।।

इस बार सेवक को सतर्क किया कि यह पत्र पृथी चन्द से बचाकर सीधे पिता गुरूदेव को ही देना है। सेवक ने ऐसा ही किया। जब पिता गुरूदेव ने पत्र प्राप्त कर पढ़ा तो उन के नेत्र स्नेह व विरहा मय पत्र के कारण सजल हो गये। पत्र पर अंक तीन लिखा था। अत: उन्होंने सेवक से पूछा इस से पहले पत्र कहां है? सेवक ने उत्तर दिया मैं दो बार पहले भी पत्र लेकर आता रहा हूँ और पत्र आप के बड़े बेटे पृथी चन्द जी को दिये है। वही फिर मुझे आप की तरफ से उत्तर देते थे। कि अभी अर्जन के लिए संदेश है कि वह वहीं रह कर सिक्खी प्रचार करें। गुरूदेव ने तुरन्त पृथी चन्द को बुलाया और उस से पूछा कि वह अर्जन के पत्र कहां है? जो इस सेवक ने तुझे लाहौर से लाकर दिये थे। पृथी चन्द के हृदय में कपट था वह षड़यत्र रच रहा था कि किसी विधि अर्जन देव जी को पिता गुरूदेव से दूर रखा जाए। किन्तु प्रकृति का खेल उस के विपरीत हो गया अब परस्थिति उलटी थी अत: पृथी चन्द ने झूठ का सहरा लिया और कहा मैं इस सेवक को जानता ही नहीं मैंने इसे कभी देखा ही नहीं मुझे इस ने कोई पत्र नहीं दिये। मैंने अर्जुन के पत्रों का करना भी क्या था? वह कोई हुंडी तो है नहीं जिसे छिपा कर मुझे कोई धन प्राप्त होने की सम्भावना थी। गुरू देव जी ने कहा अभी सत्य का निर्णय हो जाता है। उन्होंने पृथी चन्द के घरेलू सेवक को बुलाकर उसे पृथी चन्द की पत्नी करमों के पास भेजा कि वह उस से पृथी चन्द का जामा (कोट) मांग लाये। सेवक ने ऐसा ही किया समस्त संगत के समक्ष गुरूदेव ने पृथी चन्द के कोट में से वह पत्र खोज निकलवाए। इस पर पृथी चन्द बहुत छटपटाया बिना सिर पैर की बेतुकी बाते करने

लगा। यहीं पर बस नहीं पिता गुरूदेव से भी कडवे व अपशब्द कह डाले। तभी गुरूदेव ने उसे समझाने का प्रयास करते हुए कहा-भूल को मान लेना महानता है। झूठा झगड़ा करने से व्यक्ति का पतन हो जाता है।

काहे पूत झगरत हउ संगि बाप।। रहाउ ।।
जिन के जणे बडीरे तुम हउ, तिन सिउ झगरत पाप।।
जिसु धन का तुम गरबु करत हउ सो धनु किसहि न आप।।
खिन महि छोडि जाइ बिखिआ रसु, तउ लागै पछुताप।।
जो तुमरे प्रभ होते सुआमी हरि, तिन के जापहु जाप।।
उपदेसु करत नानक जन तुम कउ, जउ सुनहु तउ जाइ संताप।।

पृष्ठ 1200, राग सारंग, महला 4,

समस्त पत्रों को पढ़ने के पश्चात पिता गुरूदेव के हृदय में पुत्र अर्जुन के लिए सहज स्नेह उमड़ पडा। उन की अपनी रची लीला सम्पूर्ण हुई उन्होंने तुरन्त सेवक के हाथों संदेश भेजकर अर्जुन देव जी को वापस आने को कहा-संदेश प्राप्त होने ही श्री अरजन देव जी तुरन्त लौट चले। इस बीच श्री गुरू राम दास जी ने अपने छोटे सपुत्र अरजन देव को योग्य जानकर श्री गुरू नानक देव जी की गद्दी का उत्तराधिकारी नियुक्त करने का दृढ़ संकल्प कर लिया और उन्होंने सभी प्रकार की तैयारियां कर ली। बस अरजन देव के लोटने की प्रतीक्षा करने लगे।

जब श्री अरजन देव जी लोट कर पिता गुरूदेव के निकट पहुंचे तो उन का हृदय द्रवित हो उठा वह पुनीत चरणों में नतमस्तक हो गए। दबी पीड़ा अश्रु-धारा में फूट पड़ी। सजल नेत्रों से पिता गुरू के चरण धो डाले और उन्होंने कहा- यह अरजन इतना अभगा तो नही कि आपके पुनीत दर्शन भी न पा सके? तभी गुरूदेव पिता ने उन्हें अपने आलिंगन में ले लिया और अपनी भीगी पलको से सब मूक शब्दो में कह दिया कि मैं भी पल-पल तेरे लोटने की प्रतीक्षा ही तो कर रहा था। उनका लाडला एक कठिन परीक्षा में सफल हुआ था। वह गद्गद् हो उठे और उन्होंने अरजन के मस्तक का चुम्बन लिया। आज वह अरजन पर गर्व का अनुभव कर रहे थे।

गुरू ज्योति की प्राप्ति

गुरूदेव ने अनुभव कर लिया था कि अरजन में गुरूता के समस्त गुण विद्यमान है। धैर्य, सहनशीलता, नम्रता, निष्काम सेवा इत्यादि। परिणम स्वरूप उन्होंने विशेष दरबार सजाने का आदेश दिया जिस से सभी प्रमुख सिक्खों को आमंत्रित किया गया। तभी गुरूदेव ने मर्यादा अनुसार बाबा बुड्ढा जी को आदेश दिया कि वह अरजन जी को गुरू गद्दी पर सुशोभित कर उन्हें तिलक करे तथा स्वयं परिक्रमा कर एक विशेष थाल में कुछ सामग्री भेंट की तद्पश्चात डण्डवत नमस्कार कर दी और आदेश दिया कि सभी संगत मेरा अनुसरण करते हुए अरजन को नमस्कार करें क्योकि आज से वह गुरू नानक के अगले उत्तराधिकारी है। समस्त संगत ने ऐसा ही किया। किन्तु विवेकहीन पृथी चन्द ने उसी समय पिता गुरूदेव से झगड़ा प्रारम्भ कर दिया कि मैं आप का बड़ा पुत्र हूँ इसलिए गुरू गद्दी पर मेरा अधिकार है। आप को पक्षपात नहीं करना चाहिए आखिर मुझ में क्या कमी है जो आपने अरजन को गुरूगद्दी के लिए चुना है?

गुरूदेव ने उसे समझाने का प्रयास करते हुए कहा- बेटा गुरूगद्दी विरासत की वस्तु नहीं है। जैसे कि तुम जानते ही हो श्री गुरू नानक देव जी ने अपने सेवक को गद्दी दी थी जब कि उनके पुत्र भी योग्यता की दृष्टि से कम नहीं थे ठीक इसी प्रकार गुरू अंगद देव जी ने भी अपने सेवक को गद्दी दी है उन्होंने भी अपने पुत्रों को गद्दी नहीं दी। यह तो तुम जानते ही हो तुम्हारे नाना गुरूदेव अमर दास जी ने भी ऐसा ही किया है उन्होंने भी अपने बेटों का गुरू गद्दी नहीं दी बल्कि मुझ जैसे एक तुच्छ सेवक को गद्दी दे दी थी। ऐसे ही यह परम्परा आगे बढ़ते हुए अब तेरे छोटे भाई अरजन को गुरू गद्दी प्राप्त हुई है। इसमें विरासत वाली कोई बात नहीं है इसलिए तेरी नराज़गी का कोई औचित्य नहीं बनता। किन्तु पृथी चन्द हठ धर्मी पर अड़ा रहा। उसका कहना था कि केवल आप मुझ में कोई कमी बता दें तो मैं संतोष कर लूगां। इस पर श्री गुरू रामदास जी ने श्री अरजन देव जी द्वारा वह तीनों पत्र संगत के समक्ष रख दिये और कहा-पृथी चन्द यह पद्य अधुरे है इन को सम्पूर्ण करने के लिए कोई ऐसी रचना करो जिस से यह सम्पूर्ण हो जाए। अब पृथी चन्द के आगे बडी चुनौती थी किन्तु प्रतिभा के अभाव में वह कड़े प्रयास करने पर भी एक शब्द की भी रचना नहीं कर पाया अंत में गुरूदेव ने श्री गुरू अरजन देव जी को आदेश दिया कि बेटा अब तुम्ही यह कार्य सम्पूर्ण करो, इस पर श्री गुरू अरजन देव जी ने निम्नलिखित रचना कर के पिता गुरुदेव जी के सम्मुख प्रस्तुत की:-

भागु होआ गुरि संतु मिलाइआ।।
प्रभु अबिनासी घर महि पाइआ ।।
सेव करी पलु चसा न विछुड़ा, जन नानक दास तुमारे जीउ ।।
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई, जन नानक दास तुमारे जीउ।। रहाउ।।

नई रचना को देखकर पिता श्री गुरू राम दास जी व संगत अति प्रसन्न हुई केवल दुखी हुआ तो पृथी चन्द वह सभी को कोसता रहा परन्तु कुछ कर नहीं पा रहा था।

श्री गुरू रामदास जी को ज्ञात था कि उन का अन्तिम समय निकट है अत: वह श्री गुरू अरजन देव जी व पत्नी श्रीमती भानी जी को साथ लेकर गोइंदवाल नगर प्रस्थान कर गये वहां उन्होंने अपने साले मोहन जी, मोहरी जी को समस्त घटना क्रम से अवगत करवाया और पृथी चन्द के व्यवहार को असंगत बताकर सब को सतर्क किया। स्वयं अगले दिन एकांत वास धारण कर लिया और उचित समय देखकर शरीर त्याग कर परम ज्योति में विलीन हो गये।

श्री गुरू रामदास जी के देहावसान का समाचार फैलते ही दूर-दूर से संगत गोइंदवाल पहुँच गई। गुरू के चक्क (अमृतसर) से पृथी चन्द और अन्य संगत भी बड़ी संख्या में गोइंदवाल उमड़ पड़ी तभी गुरूदेव की अंत्येष्टि क्रिया सम्पन कर दी गई। उस समय भावुक श्री गुरू अरजन देव जी ने निम्नलिखित रचना का उच्चारण किया-

सूरज किरणि मिलि जल का जलु हुआ राम।।
जोती जोति रली संपूरन थीआ राम।।
ब्रहम दीसे ब्रहम सूणीऐ एकु एकु वरवाणीए।।
आतम पसारा करण हारा प्रभ बिना नहीं जाणीए।।
आपि करता आपि भुगता आपि कारण किआ।।
बिनवंत नानक सेई जाणहि जिनि हरि रस पीआ।।

राग बिलसवल, महला 5वां, पृष्ठ 1033

अंत्येष्टि सम्पन होने के पश्चात सभी प्रियजनो की सभा हुई जिस में गुरू आदेशों अनुसार केवल हरि कीर्तन ही किया गया किसी प्रकार का रूधन अथवा शोक व्यक्त करने की अनुमति प्रदान नहीं की गई। इस पर पृथी चन्द ने गलत फैमियां उत्पन्न करने के लिए अफहवा उड़ा दी की पिता जी तो बिल्कुल स्वस्थ थे उन का निधन अकस्मात कैसै हो सकता है? अवश्य ही अरजन ने उन्हें विष देकर मार डाला है। किन्तु मामा मोहन जी, मोहरी जी ने दुष्ट प्रचार का कड़ा विरोध किया उन्होंने संगत को सत्य से अवगत करवाया और कहा- पूर्ण पूरूष जन्म-मरण से ऊपर होते है । वह विधाता द्वारा दी गई श्वासों की पूंजी का सदुपयोग कर गुरूपूरी को सहर्ष प्रस्थान कर गये है। इस में किसी को तनिक भी शंका नहीं करनी चाहिए। पृथी चन्द की बात पर किसी ने भी कोई प्रतिक्रिया नहीं की वह अपना-सा मुंह लेकर रह गया। अखिर गुरूदेव का तेरवीं का दिन आ गया। समस्त क्षेत्र का अपार जन-समूह संगत रूप में एकत्र हुआ। समस्त गणमान्य लोगों ने अपनी श्रद्दा अनुसार गुरूदेव के उत्तराधिकारी श्री गुरू अरजन देव जी को भेंट स्वरूप वस्त्र इत्यादि दिये किन्तु पगड़ी की रस्म समय पृथी चन्द ने फिर से बखेड़ा उन्पन कर दिया कि मैं बड़ा लड़का हूँ अत: परम्परा अनुसार मेरा अधिकार इन समस्त वस्तुओं पर बनता हैं। उदारचित गुरू अरजन देव जी ने यह तर्क तुरन्त स्वीकार कर लिया। और पगड़ी अपने बड़े भाई पृथी चन्द के सिर बंधवा दी। इस पर उसने वह समस्त धन जो उपहार स्वरूप आया था समेटा और अमृतसर लोट गया। कुछ लोगों ने पृथी चन्द के कार्यो को देखकर अपत्ति की परन्तु श्री गुरू अरजन देव जी ने कहा-भ्राता जी को केवल इन्हीं वस्तुओं की आवश्यकता है सो उन की तृक्ष्णा पूर्ण होनी चाहिए।